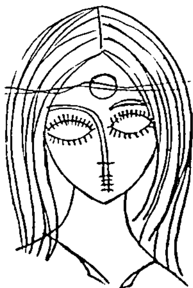
सवितरी

शैलेश मटियानी

सवित्री



दामोदर दत्त दीक्षित
को सादर



"यहां सोहबतियाबाग में आपके कौनो रिश्तेदार रहित हैं का, साहेब ?"

"नहीं," कहते हुए उसने अपनी गोद में थमे सुनील को थोड़ा-सा और संभालकर पकड़ लिया, हालांकि रिक्शा जिस मंथरता से आगे बढ़ रहा था, इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। उसने अनुभव किया कि रिक्शा-वाले के पूछने से वह सपना देखते हुए में से जगा दिए गए व्यक्ति की तरह चौंक उठा है।

फाफामऊ का स्टेशन छूटते ही, जब गंगापुल पर से ट्रेन गुजरी थी, तब भी उसे अचानक लगा था कि जैसे एक दुनिया पीछे छूट चुकी है और दूसरी शुरू हो रही है। उसको सर्वथा अप्रासंगिक रूप से यह याद आया कि बछरावां या रायबरेली के पास कहीं उसने मीता की जांघ पर सिर टिकाने की कोशिश की थी, तो मीता ने अपना घुटना ऊंचा उठा लिया था। उसने अपने भीतर काई की तरह उगी तनावपूर्ण मानसिकता को ठेलने की कोशिश में रिक्शेवाले की तरफ देखा। उसका यों ही पूछ लेने को मन हुआ कि क्या उसका निहायत संक्षिप्त उत्तर उसको अपर्याप्त लगा है, लेकिन अपने इस तरह से पूछने की हास्यास्पदता का ध्यान आते ही वह धीमे से हंसा, जैसे होंठों से नहीं, जीभ से हंसना चाहता हो।

इसी बीच उसने एक नज़र मीता पर भी डाली। उसके चेहरे पर लम्बे सफ़र की थकान के अलावा भी कुछ ऐसा है, जो उसके भीतर की खिन्नता की गंध देता हुआ लगता है। मीता का स्वास्थ्य अच्छा-खासा है। सरसरी

दृष्टि से देखे जाने पर भी वह अच्छे खाते-पीते परिवार में पली हुई लगती है। उसकी किंचित् नीली आंखों में एक तरह की तुर्शी है, जो इस वक्त भी ज्यों की त्यों है।

हो सकता है, सिर्फ भ्रम हो। बदलती परिस्थितियों के साथ स्त्रियों का रुख काफी संतुलित होता है। वह मानना चाहता था कि अभी तक की लम्बी यात्रा में जितनी बातें उन दोनों के बीच हो चुकी हैं, उन्हें अपने-आपमें काफी होना चाहिए। रहने की जगह जैसी कुछ भी है, वह पहले ही बता चुका है। बल्कि अपनी स्थिति और रहने की जगह, दोनों का अपेक्षाकृत कुछ बदतर विवरण ही उसने दिया है, ताकि मीता पहुंचते ही भभक न उठे।

उसका एकाएक ही कहने को मन हुआ कि 'मीता, अपने सामर्थ्य-भर मैं हर कोशिश करूंगा कि तुम सुखी रह सको।'...और लगा, वह निरंतर एक मानसिक दबाव में है। शायद, एक लम्बे अन्तराल तक उसे मीता की अप्रसन्नता का सामना करना पड़ेगा।

इसी बीच रिक्शेवाले ने यह भी पूछ लिया कि वह नौकरी कहां करता है और कि 'बहूजी तो पहली बार इलाहाबाद आई लगती हैं। बड़े घर की बेटी लगती हैं, बड़ा तप है मुंह पर।'

इसकी उम्र पैंतालिस के आसपास होगी, उसने सोचा। अपनी बढ़ी हुई दाढ़ी में वह लगभग पचास वर्ष का लग रहा था, लेकिन उसके कपड़े काफी साफ-सुथरे थे। हां, ठंड की मार को देखते हुए उन्हें पर्याप्त नहीं कहा जा सकता था।

उसको यहां रहते वर्षों हो गए हैं और उसने प्रायः यही देखा है कि अधिकांश रिक्शेवाले मैले-कुचैले कपड़ों में रहते हैं। आनंदभवन वाला चौराहा आने तक में उसने रिक्शेवाले का नाम भी पूछ लिया था और बिना किसी तरह की अनिवार्यता के ही यह भी महसूस किया था कि उसका नाम याद रहेगा।

"शिवचरन ! तुम्हारे बच्चे कितने हैं?"

"दो लड़की-जात हैं, बाबू साहेब, एक छोकरा है साला—आवारागर्द।"

तो दिखाई न दे और वह संतुष्ट होकर वापस चला जाए।

रिक्शेवाले ने पूछ लिया कि यहां कौन-सा मकान किराये पर लिया है, तो उसे फिर से अपनी स्थिति स्पष्ट करने का अवसर मिल गया, "अरे शिवचरन! तुम तो, भई, इसी मोहल्ले के रिक्शेवाले हो, तो वावू मोहलत रायजी की कोठी तो जानते ही होंगे? वस, उसीकी वगल का वंगाली वावू वाला मकान है। एक मध्यम किस्म का कमरा और छोटा-सा वरामदा। वस, कामचलाऊ है। पहले कभी सस्ते किराये रहे होंगे, अब तो इलाहावाद में भी एक मामूली कमरा तक पचास-साठ से कम में नहीं मिलता है। हमें पैंतालिस में अच्छी ही जगह मिल गई है इस हिसाव से। तुम कहां रहते हो?"

"हम भी, वस, आपके पड़ोस में ही रहते हैं, साहेव! मजार के पीछे दूधवालों की रिहायश है ना, सरकार! वस, वहीं एक कच्चा पुश्तैनी मकान है। वो भी नगरपालिका वाले आ-आके धमका जाते हैं कि तोड़ देंगे। भला हो वावू मोहलत रायजी का, आसरा दिए हुए हैं कि रहते हमारे दम के तुम लोगों को कोई नहीं उजाड़ सकता। रिक्शा मजार वाली गली से ले चलें, हुजूर? एमेले साहव की कोठी तो उधर से ही नजदीक पड़ेगी।"

"ले चलो। इस मोहल्ले में आए हमको ज्यादा दिन हुए नहीं। वस, यों समझो कि कमरा मिला है, तो वहूजी को लाने चले गए। वैसे दूध-सव्जी, वच्चों के स्कूल वगैरह की लिहाज से तो यह मोहल्ला काफी अच्छा है। सव चीजें आसपास हैं।"

शिवचरन के वहाने, उसने महसूस किया, वह इस तरह की सारी वातें मीता से कर रहा है। उसे कुछ डर भी लगा कि कहीं मीता तड़ाक से यों न कह दे कि 'हां, वहुत लम्वी-चौड़ी खरीदारी तुम्हींको तो करनी है, घी-दूध और सब्जी-फल वगैरह की।'···लेकिन मीता के चेहरे पर अभी भी सिर्फ एक चुप्पापन था, जैसे किसी झील की सतह पर का पानी जमकर ठोस हो गया हो।

डेरे पर वे लोग पहुंचे, तव लगभग दस वज चुके थे और ठंड आदमी के शरीर पर सवारी गांठे रहने की सी मुद्रा में से हट चुकी थी।

तो दिखाई न दे और वह संतुष्ट होकर वापस चला जाए

रिक्शेवाले ने पूछ लिया कि यहां कौन-सा मका

तो उसे फिर से अपनी स्थिति स्पष्ट करने का

शिवचरन ! तुम तो, भई, इसी मोहल्ले के

रायजी की कोठी तो जानते ही होंगे ?

बाबू वाला मकान है। एक मध्यम कि

बस, कामचलाऊ है। पहले कभी

बाद में भी एक मामूली कमर

हमें पैंतालिस में अच्छी ही

2

रहते हो ?"

"हम भी, बस । । बरामदा पूरब की ओर है और, मोहलत राय की

दूधवालों की f में न होने से, सर्दियों में भी काफी देर तक धूप रहती

मकान है। र मायके से लाई हुई गहत-भट-मसूर की दालें और बड़ियां

भला हो फैला रही थी। इसके अलावा छोटे-से रसोईघर को लीपना

के तु किया था, लेकिन इसी बीच पता चला कि बच्चे को हल्का बुखार हो

है, तो सब अधूरा छूट गया।

दोपहर का खाना स्टोव पर ही बना लिया गया। और जनार्दन खाना खाते ही यह कहकर निकल गया कि 'अग्रवाल साहब के यहां की 'ट्यूशन' हफ्ते-भर से छूटी हुई है, आज हो आऊं। इतवार है, बच्चे घर पर ही होंगे। कुछ मंगाना हो, तो बताओ। लौटते में लेता आऊंगा।'

मीता ने जिस तरह आंखें उठाकर देखा था, बींधने वाला था। उसने चुपचाप एक कोने में खड़ी साइकिल निकाली और चल दिया। वापस लौटा, तब शाम होने को थी और बच्चे का ज्वर पहले की अपेक्षा कुछ बढ़ गया था। सब्जी तथा कुछ अन्य जरूरत की चीजें जो वह ले आया था, चुपचाप रसोईघर में रखकर, वह दवा लेने निकलने लगा, तो मीता की आवाज पीठ पर का कपड़ा पकड़कर खींचती-सी लगी, "दवा क्या रास्ते में खुद अपने हाथों से बनाकर ले आओगे ?"

वह पीछे लौट आया, तो वह बोली, "बच्चों की दवा अन्दाज से नहीं लाई जाती। नजदीक में कोई डाक्टर हो, तो मैं इसे साथ लिए चलती हूं।"

"चलो, रिक्शा करके डाक्टर रमेश चन्द्रा के यहां ले चलते हैं। इस वक्त अपने घर पर ही वो देखते हैं मरीजों को।"

गली में से निकलकर, चौराहे पर दोनों पहुंचे, तो देखा कि शिवचरन भी वहीं एक किनारे रिक्शा खड़ा किए बातों में लगा है। उन लोगों की ओर देखते ही बोला, "कहीं जाना है क्या, साहेब ?"

"जरा बच्चे की तबियत ठीक नहीं। रमेश डाक्टर के यहां तक जाएंगे।"

उसका वाक्य पूरा होने से पहले ही शिवचरन रिक्शे की ओर मुड़ गया था, लौटकर बोला, "पान-वान खाना हो तो खा लें।"

"नहीं।"

इस बार मीता बोली थी और उसे लगा कि उसकी आवाज में सख्ती है।

रिक्शा तेज रफ्तार से दौड़ने लगा, तो मीता ने हल्के से भिड़कते हुए कहा, "इतना बेतहाशा न दौड़ाओ, शिवचरन ! गोद में बीमार बच्चा है।"

उसने लगभग उसी रफ्तार में ब्रेक लगा दिया, तो रिक्शा एक झटके के साथ रुक गया। उसने गरदन पीछे मोड़ ली थी और उसके माथे के दाईं ओर, घाव का निशान साफ-साफ दिख रहा था।

वह कुछ सहमा कि कहीं मीता के टोकने का यह बुरा तो नहीं मान गया है, लेकिन उसके चेहरे पर नाराजगी की सख्ती नहीं थी।

"बहूजी हमार नाम पुकार लिहिन—'शिवचरन !' मुला हम धन्यवाद हो गए। सबेरे बाबूजी बहुत कहत रहे 'शिवचरन-शिवचरन'—बात कुछ बनी नहीं। हमारी जो बिटिया सवित्तरी है ना, साहेब ! हमका चिढ़ावे के खातिर अभी भी कह देती है कि 'देखो, बेटा शिवचरन, दढ़मौंगी खाने का काम ना करो।' आपके यहां आई रही कि नहीं, बाबूजी !"

मीता ने रिक्शे को ठेलने की सी मुद्रा में 'नहीं' कहा, तो वह मुड़ा और रिक्शा आगे बढ़ा लिया। डाक्टर रमेश चन्द्रा की कोठी के फाटक के पास पहुंचते ही उसने कहा, "बालक ले के आई है, प्रयागराज में, बहूजी, तो कभी अलोपिन मैया के दरबार में भी हो आवें। नजदीक है मैया। बाल-गोपाल को शरण देने वाली हैं। कौन बड़ा उत्सव करना है, यही फूल-बतेशा-अगरबत्ती की भूखी मैया हैं अलोपिन। हमारी सवित्तरी हुई रही ना, साहेब, मुश्किल

से पंदरा दिन की रही होगी, जव हम अलोपिन मैया और कल्यानी देवी के मन्दिर में माथा टेके खातिर गए रहे।"

वे दोनों रिक्शे से उतर गए, तो शिवचरन रिक्शा यह कहते हुए वाहर की तरफ निकाल ले गया, "आप लोग दवा लेके आवें, साहेव ! हम फटकिया ऊपर रहेंगे। यहां मोटू कम्पौण्डर साहेव मना करित हैं।"

"वहुत वातून है यह रिक्शेवाला तो, दिमाग चाट जाता है। खांसता और हांफता भी वहुत है, मगर रिक्शा फिर भी तेज दौड़ाता है।" उसने लगभग आक्षेप के स्वर में कहा, लेकिन मीता ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। डाक्टर के द्वारा वुलाए जाने की प्रतीक्षा में वैठे हुए लोगों की कतार में एक वेंच पर वह वैठ गई।

उसने गहराई से अनुभव किया कि समय और स्थान के एक अच्छे-खासे अन्तराल के वाद भी कुछ ऐसा है, जो मीता के चेहरे पर, उसकी आंखों में और उसके वोलने में—उसके सम्पूर्ण अस्तित्व में जहां का तहां है। उसे एकाएक याद आया कि जव इलाहावाद के लिए विदा होते समय मीता अपने घर की सीढ़ियां उतर रही थी, तो अपने पांवों से उनपर वजन डालती हुई लगी थी उसे। एक वार तो उसका मन हुआ था कि कहे, 'अगर तुम वहुत नाखुश हो, मीता !···चाहो, तो अभी भी अपने घर पर ही रुकी रहो। कभी स्वयं तुम्हारा मन हो आने को, तो लिख देना।'···लेकिन इस वात की आशंका में चुप लगा गया कि मीता का चुप्पापन विस्फोटक और अप्रिय स्थिति न उत्पन्न कर दे।

यह उसे स्वयं अप्रीतिकर लग रहा था कि वह अपनी चिन्ता को सिर्फ वच्चे पर केन्द्रित नहीं कर पा रहा है। डाक्टर रमेश चन्द्रा की कोठी के अशोक-वृक्षों की पांत-से भव्य लगते हुए लम्वे-चौड़े लान पर की दूव कितनी मोहक लगती है। उसको लगा कि यह दूव जैसे प्रतीक्षा में है कि कोई वहां वैठे और लम्वे-लम्वे वार्तालापों से उसे धन्य करे। यूनिवर्सिटी में शोध के सिल-सिले में आते-जाते दिनों कनिका वनर्जी के साथ का दूव पर होना, अचानक ही उसकी स्मृति में उभर आया। आदमी खुद कितनी जल्दी और कितना एकाएक अपने ही लिए अतीत वन जाता है।

कोशिश तो उसने रामनगर, मीता के मायके में, रहते हुए भी की थी

कि अपने-आपको उसे ठीक-ठीक समझा सके। समझा सके कि गरीब परिवार का होते हुए भी खुद उसके पास सपने में देखा हुआ-सा भविष्य था और अभी भी उसके अतीत बन चुकने की तकलीफ है।...लेकिन वहां रहते हुए मीता का रवैया यह था कि इधर उसने वार्तालाप करना चाहा और उधर वह चुपके से उठी और कमरे से बाहर निकल गई। पांच दिन लगातार वहां रहा था और इस सारे अरसे में मीता का रुख उसके प्रति पत्थर बनी अहिल्या का-सा प्रतिक्रियाशून्य था, हालांकि उसकी यह प्रतिक्रियाशून्य दिखने की मुद्रा ही सबसे गहरी प्रतिक्रिया थी।

मीता ने साड़ी के पल्ले की ओट देते हुए सुनील को दूध पिलाना शुरू किया, तो उसका धीमे से हंसने को मन हुआ, क्योंकि सावधानी के बावजूद की लापरवाही में वह सिर्फ एक बच्चे की मां होने की गवाही देती हुई लग रही थी।

वह उसे एकटक देखना चाहता था, लेकिन तुरत दूसरी ओर देखने लगा, ताकि मीता का चेहरा सख्त न हो जाए। कम्पाउण्डर 'टेम्प्रेचर' देखने आया तो उसने मीता की गोद से सुनील को इस तरह उठाया कि अंगुलियां उसके दूध पिलाते में खुले स्तन से छू गईं और उसे ऐसा रोमांच हुआ, जैसे किसी दूसरे की पत्नी को छू रहा हो।

बच्चे के लिए दवा लेकर, वे घर को लौटने लगे, तो शिवचरन रास्तेभर कुछ नहीं बोला। पहले चौराहे पर आकर वालसन की दुकान में दवाएं खरीदीं और यों ही, बिना किसी प्रसंग के, मीता के लिए चुइंगम की कुछ टिकियां ले लीं और रिक्शा, सोहबतियाबाग की तरफ, वापस मोड़ लिया।

घर पहुंचे, तब लगभग धुंधलका होने को आ गया था। वह बच्चे को चारपाई पर लिटाने लगा था कि देखा, मीता ने शिवचरन को एक रुपया दिया और वह इतना कहते हुए निकल गया कि "हम सवित्तरी को कह देंगे, बहूजी! आप बीमार बच्चे को संभालेंगी कि घर का कामकाज करेंगी।"

मीता ने पहले आले में रखा दीया जलाया और तब बिजली जलाई।

वच्चे को दवा पिलाने के वाद, वह रसोईघर में पहुंचकर, सब्जी व
तयारी करना ही चाहती थी कि वह भी रसोईघर में पहुंच गया।
हाथ से लौकी लेने के वहाने पहले उसने उसे छुआ और फिर एकाए
वांहों में भर लिया। उसने अनुभव किया कि ऐसा करते हुए वह
आपको उन दिनों से कहीं ज्यादा रोमांचित अनुभव कर रहा है,
विवाह हुआ ही था और अपने खण्डहर होते हुए-से पुश्तैनी घर में कु
को दोनों ही अपने सम्पूर्ण एकान्त में रहे थे।

दरअसल मीता के भीतर के अलगाव को उसने तभी अपेक्षाकृत
गहराई से अनुभव किया था और अपने सम्पूर्ण अस्तित्व में उसे ए
हीनता की-सी प्रतीति हुई थी। उसे अव भी अक्सर यह याद आ जात
किसी ऐसे ही अवसर पर उसने अपने भीतर की खिन्नता में से कहा
वह पत्थर की अहिल्या है।...

वह भीतर ही भीतर कहीं डर रहा था कि मीता झटके के सा
आपको छुड़ाती हुई अलग न खड़ी हो जाए, लेकिन उसने सिर्फ
कहा, "तुम्हें वक्त-वेवक्त कुछ नहीं सूझता? सब्जी मैं खुद वना लूंगी,
सुनील का 'टेम्प्रेचर' लेकर देखो। थर्मामीटर वहीं पर, उसके सिरहा
रखा है।"

वह कुछ भी तय नहीं कर सका कि मीता को जो उसने एकाएक
वद्ध कर लिया था, उसकी प्रतिक्रिया उसपर क्या हुई है। उसने
मीता के रुख को लेकर अभी भी वह अधर में ही लटका है। वह
कहे ही वच्चे की ओर निकल गया और उसने अनुभव किया कि
प्रतीक्षा में रहना होगा। हो सकता है, मीता कोई एतराज न करे
इसके वाद भी सुवह उसके चेहरे की त्वचा पर अलगाव का वही
वेरुखापन पसरा हुआ मिल सकता है, जिसमें से उसका हल्का-सा
लिए गोरे रंग तथा यौवन के लावण्य से दिपता मुंह किसी सख्त
वना हुआ प्रतीत होने लगता है।

वह वच्चे को थपथपा रहा था कि उसे किसीका 'वहूजी'
सुनाई पड़ा। कमरे के इस कोने में वैठे रहने पर वरामदे का ठीक

वाला, यानी सीढ़ियों के पास का, हिस्सा दिखाई नहीं देता। उसने आवाज से अन्दाजा लगाया कि कहीं शिवचरन की बेटी न हो।

"पहाड़ पर से आप ही लोग तो आए हैं ना, बहूजी ?"

सवित्तरी का पूछना तो उसे सुनाई दिया, लेकिन मीता ने क्या जवाब दिया—दिया भी, या नहीं—उसे कुछ सुनाई नहीं पड़ा। वह अपनी उत्सुकता में से बाहर निकलना ही चाहता था कि मीता की किंचित् मुखर आवाज उसे सुनाई दे गई, "कल आना। जरा हम बाबूजी से पूछ लें, तब बताएंगे।"

वह कहना चाहता था कि इससे पैसे-वैसे पूछ लो, क्योंकि मीता के उत्तर में उसे अपनी आर्थिक तंगी के प्रति बरती गई सावधानता का आभास हो गया था, लेकिन फिर उसे यही लगा कि इस वक्त चुप ही लगाए रहना ठीक होगा।

सवित्तरी का सीढ़ियों पर से उतरना उसे साफ-साफ सुनाई दे गया। पाजेब के घुंघरुओं के बजने की जो आवाज उसे सुनाई दी, उससे किसी अत्यन्त अभिजात और मंथर गति से चलने वाली औरत का-सा आभास उसे हुआ।

खाना खाने के बाद, जब सोने की तैयारी होने लगी, तो उसने मीता से कहा, "मेरा बिस्तर जमीन पर लगा दो और तुम दोनों मां-बेटे चारपाई पर सोना। ज्यादा थकी न हो तुम, तो थोड़ी-सी देर पिण्डलियां दबा देना। लम्बे सफर की वजह से भारी-सी हो गई है।"

अपने वाक्य को पूरा करते न करते उसे स्वयं किसी झील की स्थिर सतह पर कंकर फेंक देने की-सी अनुभूति हुई, लेकिन यह देखकर उसे सिर्फ विस्मय ही हुआ कि मीता ने पलटकर उसकी तरफ देखा, तब वह धीमे-धीमे मुस्करा रही थी।

3

उत्सव-पर्वों पर लोगों की नींद हराम करने के लिए कृतसंकल्प [illegible] ड़कों पर से रोशनी के लिए गाड़े गए खम्भे तक समेट लिए थे। जिस रह नगरपालिका के कुत्तामार दस्ते के द्वारा आवारा कुत्तों को पकड़ ले जाने के बाद रात का सन्नाटा जाजम की तरह मोहल्ले-भर में बिछ जाता है—सार्वजनिक उत्सवों पर लाउडस्पीकर की मार से नींद हराम कर देने वाले लोगों के एक किनारे हट चुकने के बाद भी मोहल्ले में शोर-शराबा कम था।

मीता जब धीरे-धीरे पांव दबाने लगी, तो उसे याद आता गया कि दीपावली का पर्व मायके में ही बीता था, मगर इस तरह कि उन दोनों के बीच अलगाव का अंधेरा ज्यों का त्यों बना रहा। उसे सहसा ही स्मरण हो आया कि महालक्ष्मी-पूजा की रात दुलहन के से तेवर में सजी हुई मीता पंक्तिबद्ध दीपकों को अपने ही तारुण्य से उजागर करती लग रही थी, लेकिन उसके प्रति मीता का रुख इतना सख्त था कि चाहने के बावजूद वह यह कहने का साहस बटोर नहीं सका कि 'आज तुम अद्भुत रूप से सुंदर लग रही हो, मीता! बिलकुल देवी-प्रतिमा की तरह।'

पांच दिन वह वहां लगातार रहा और प्रायः सारी बातचीत मीता की मां के माध्यम से ही होती रही क्योंकि मीता के पिता के स्वभाव में कुछ ऐसा था कि वह उनके आमने-सामने पड़ने से बचने की कोशिश करता था और मीता का रवैया ऐसा था कि जैसे वह इस बात का संकल्प कर चुकी

हो कि उसे जनार्दन के साथ किसी तरह का वार्तालाप करना नहीं है।

उस सारी स्थिति, और फिर, रामनगर से यहां तक की लम्बी यात्रा के बावजूद, जिस तरह की औपचारिकता वह बरतती चली आ रही थी—वह सचमुच विस्मय में था कि बिना किसी तरह के प्रतिवाद के यह कैसे सम्भव हुआ।

मीता ने सिर्फ दीया-भर जलता छोड़ दिया था। बच्चे का आकस्मिक रूप से खराब हो आया स्वास्थ्य अब संभलने लगा था और जनार्दन के पांव दबाने बैठने से पहले मीता ने उसका टेम्प्रेचर लिया, तो सिर्फ निन्यानवे था। एक निश्चिन्तता की सांस लेकर, मीता ने बच्चे को गोद में उठा लिया और दूध पिलाने लगी, तो उसने कह दिया, "इसको तुम दूध इस तरह पिलाया करो कि मैं भी देख सकूं। मैं उन दिनों को अपनी स्मृति में लाना चाहता हूं, जब इसी तरह मैं अपनी मां की गोद में रहता होऊंगा।"

मीता ने उसे और भी ढंककर दूध पिलाना शुरू कर दिया। बोली, 'कहां तो ऐसा लगता था, जैसे तुम्हारी जीभ को किसीने तागे से कसकर बांध दिया हो, बस, सिर्फ मां के साथ गुसुर-पुसुर लगाए रहते थे—यहां आते ही चकचकाने लगे हो।"

उसने दीये के मद्धिम प्रकाश में देखा, मीता के चेहरे पर एक निस्तब्ध स्निग्धता थी। उसे लगा कि विवाह के बाद जो थोड़े-बहुत दिन साथ रहने का अवसर मिला भी था, उसमें मीता ऐसी कभी नहीं हुई थी। नितान्त अन्तरंग क्षणों में भी वह इतनी सम्पूर्ण कभी नहीं लगती थी।

उसने सुनील को प्यार करने के बहाने मीता को छुआ, तो अपनी अंगुलियों के पोरों पर ऊष्मा की अनुभूति हुई। मीता ने उसका हाथ झटक दिया, तो उसके कंधे पर हाथ रखता हुआ बोला, "तुम, शायद, इस बात की कल्पना नहीं कर सकोगी, मीता, कि मेरा पिछला सारा समय कितने-कितने असमंजसों में बीत गया। इस वक्त तुम जैसे व्यवहार कर रही हो, तुम्हारी आवाज में जिस तरह की कोमलता है—कहने दो कि मुझे तुम प्रभु-कृपा के तुल्य लग रही हो।"

मीता ने धीमे से सुनील को अलग किया और उसके होंठों को धोती के छोर से धीमे से पोंछा, तो उसने पूछ लिया, "क्या तुम्हें अभी तक भी इस

उतरता है ? अब तो सुनील लगभग दो साल का होगा ?"

मीता ने एक क्षण को आंखें तरेरकर उसे देखा और फिर कंधे पर से हाथ हटाते हुए बोली "कभी-कभी तो तुम बहुत बेवकूफों की सी बातें करते हो। यह औरतों की-सी आदतें नहीं मालूम कहां से सीखी हैं। तुम तो ऐसे पूछते हो, जैसे गाय-भैंसों के बारे में पूछा जाता है। हमारी बड़ी भाभी का केदार स्कूल जाने लगा था, तब भी मां का दूध पिया करता था।"

"यानी तुम्हारी नजर में बड़ी उम्र इसमें कोई बाधा नहीं है ?"

वह तमकती हुई-सी उठ खड़ी हुई और सुनील को चारपाई पर सुलाने के बाद हंसते-हंसते दोहरी हो गई।

वह जमीन पर बिछे बिस्तर पर बैठा था। उसने देखा, मीता धीरे-धीरे आले के पास गई। देव-मूर्तियों वाले सिंहासन का छोटा-सा लाल पर्दा नीचे गिराया और फिर अपनी हथेली के स्पर्श से दीये को बुझाने के बाद, उसके पायताने आकर बैठ गई। वह लेट गया, तो उसने धोती को टखनों पर से ऊपर कर दिया और धीमे-धीमे उसके पांव दबाने लगी।

दीया बुझाए जाते ही उसको लगा कि वह इस अंधकार में किसी प्रशांत महासागर की सतह पर तैरते जल-पक्षी की तरह हल्का और मुक्त हो गया है।

मीता की उपस्थिति सिर्फ पिण्डली पर पड़ने वाले उसकी अंगुलियों के दबाव और चूड़ियों की आवाज से ही जानी जा सकती थी, लेकिन उसको लगा कि इस अंधेरे में वह मीता को कहीं ज्यादा साफ देख पा रहा है।

सुख का ऐसा गहरा आवेग अपने वैवाहिक जीवन में पहले कभी उसने अनुभव किया नहीं। उसको लगा कि अब वह वक्त सामने है, जबकि मीता को सम्बोधित करके जो कुछ वह कहेगा, उसे सुना जाएगा। सुना जाएगा और समझा जाएगा। स्त्री का सम्पूर्ण और सहज समर्पण कितना अभिभूत कर देने वाला होता है, इसकी अनुभूति उसे पहली बार हुई।

उसने अपने दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में जोड़कर, तकिये पर हाथ फैला लिए और फिर हथेलियों पर सिर टिकाते हुए बोला, "हमारे बाबूजी कहा करते थे कि परमात्मा की इच्छाएं क्या हैं, इसे हम अपनी

उन इच्छाओं से ही जान सकते हैं, जो हमारे भीतर उत्पन्न होती हैं, तो हमें और समुद्र का जलपक्षी बनाती हैं। मीता, हमारे बाबूजी धनहीन, किन्तु गहरे संस्कारी ब्राह्मण थे। मैं अब भी यही मानता हूं कि अपने इतने अभावों-से जीवन में भी मुझमें जो एक शांति है, यह उन्हींके पुन्यों का फल है। जिस जगह यह सुनील की और तुम्हारी चारपाई लगी है—यहीं, ठीक इसी जगह इनका प्राणांत हुआ था। जिसे ब्रह्ममुहूर्त कहा जाता है, सुबह के खुलने का लगभग वही वक्त था, मीता।···और बाबूजी की आवाज नींद में होने के कारण मुझे आकाशवाणी की तरह सुनाई दी थी। उन्होंने मेरे माथे पर हाथ फेरा था और कहा था, 'जनार्दन, भगवान अंशु-माली के उदय का वक्त हो गया है, मुझे पूर्वाभिमुख कर दे, बेटा!'···मैंने उन्हें पूर्वदिशा में किया, तो उन्होंने कमरे की खुली हुई खिड़की की ओर प्रणाम की मुद्रा में हाथ जोड़े और प्राण त्याग दिए।···"

वासना और स्त्री-गंध की ऊष्मा से आवेगशील दिखते हुए जनार्दन का इस तरह का एकाएक अपने पिता की स्मृति में आकुल हो उठना, किंचित् विलक्षण-सा लगा मीता को। उसने अंधेरे में ही अनुमान लगा लिया कि इस वक्त जनार्दन की आंखों में आंसू होंगे। एक बार उसका मन हुआ कि धोती के छोर से जनार्दन की आंखों को पोंछ दे, लेकिन फिर लगा कि यह उसकी भावाकुलता में विघ्न डालना होगा। धीमे से पूछा, "बाबूजी, मेरे लिए भी कुछ कहते थे?"

वह ऐसे बोला, जैसे डूबे हुए में से बाहर निकल रहा हो, "तुम जो इस वक्त मेरे पास हो, यह उन्हींका कहा हुआ है, मीता! अब तुमसे छिपाना क्या, जब पिताजी के सख्त बीमार होने का पत्र मैंने लिखा था और फिर भी तुम नहीं आईं, तो मुझे यही लगा कि अब तुम मेरे लिए अतीत की वस्तु हो चुकी हो। तुम्हारे पिताजी का वह पत्र, जिसमें उन्होंने रामनगर आकर बातचीत कर लेने को कहा था, मुझे बहुत ही अपमानजनक लगा था। इस बार मैं जो उनसे एक बार भी ठीक से बात नहीं कर सका, इसका कारण पत्र ही था। तुम, शायद, इस बात की कल्पना नहीं कर सकोगी कि असाध्य रुग्णता में ग्रस्त पिता के मल-मूत्र को अपने हाथों से साफ करते हुए किसी ऐसे आदमी के मन पर क्या बीत सकती है, जिसने इस आशा में

रता है ? अब तो सुनील लगभग दो साल का होगा ?"

मीता ने एक क्षण को आंखें तरेरकर उसे देखा और फिर कंधे पर से थ हटाते हुए बोली "कभी-कभी तो तुम बहुत बेवकूफों की सी बातें करते । यह औरतों की-सी आदतें नहीं मालूम कहां से सीखी हैं । तुम तो ऐसे छते हो, जैसे गाय-भैंसों के बारे में पूछा जाता है । हमारी बड़ी भाभी का कदार स्कूल जाने लगा था, तब भी मां का दूध पिया करता था ।"

"यानी तुम्हारी नजर में बड़ी उम्र इसमें कोई बाधा नहीं है ?"

वह तमकती हुई-सी उठ खड़ी हुई और सुनील को चारपाई पर सुलाने के बाद हंसते-हंसते दोहरी हो गई ।

वह जमीन पर बिछे बिस्तर पर बैठा था । उसने देखा, मीता धीरे-धीरे आले के पास गई । देव-मूर्तियां वाले सिंहासन का छोटा-सा लाल पर्दा नीचे गिराया और फिर अपनी हथेली के स्पर्श से दीये को बुझाने के बाद, उसके पायताने आकर बैठ गई। वह लेट गया, तो उसने धोती को टखनों पर से ऊपर कर दिया और धीमे-धीमे उसके पांव दबाने लगी ।

दीया बुझाए जाते ही उसको लगा कि वह इस अंधकार में किसी प्रशांत महासागर की सतह पर तैरने जल-पक्षी की तरह हल्का और मुक्त हो गया है ।

मीता की उपस्थिति सिर्फ पिण्डली पर पड़ने वाले उसकी अंगुलियों के दबाव और चूड़ियों की आवाज से ही जानी जा सकती थी, लेकिन उसको लगा कि इस अंधेरे में वह मीता को कहीं ज्यादा साफ देख पा रहा है ।

सुख का ऐसा गहरा आवेग अपने वैवाहिक जीवन में पहले कभी उसने अनुभव किया नहीं । उसको लगा कि अब वह वक्त सामने है, जबकि मीता को सम्बोधित करके जो कुछ वह कहेगा, उसे सुना जाएगा । सुना जाएगा औ समझा जाएगा । स्त्री का सम्पूर्ण और सहज समर्पण कितना अभिभूत क देने वाला होता है, इसकी अनुभूति उसे पहली बार हुई ।

उसने अपने दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में जोड़कर, तकिये हाथ फैला लिए और फिर हथेलियों पर सिर टिकाते हुए बोला, "ह बाबूजी कहा करते थे कि परमात्मा की इच्छाएं क्या हैं, इसे हम अ

उन इच्छाओं से ही जान सकते हैं, जो हमारे भीतर उत्पन्न होती है, तो हमें क्षीर समुद्र का जलपक्षी बनाती हैं। मीता, हमारे बाबूजी धनहीन, किन्तु गहरे संस्कारी ब्राह्मण थे। मैं अब भी यही मानता हूं कि अपने इतने अभावों-से जीवन में भी मुझमें जो एक शांति है, वह उन्हींके पुण्यों का फल है। जिस जगह यह सुनील की और तुम्हारी चारपाई लगी है—यहीं, ठीक इसी जगह उनका प्राणांत हुआ था। जिसे ब्रह्ममुहूर्त कहा जाता है, सुबह के खुलने का लगभग वही वक्त था, मीता।···और बाबूजी की आवाज नींद में होने के कारण मुझे आकाशवाणी की तरह सुनाई दी थी। उन्होंने मेरे माथे पर हाथ फेरा था और कहा था, 'जनार्दन, भगवान अंशु-माली के उदय का वक्त हो गया है, मुझे पूर्वाभिमुख कर दे, बेटा!'···मैंने उन्हें पूर्वदिशा में किया, तो उन्होंने कमरे की खुली हुई खिड़की की ओर प्रणाम की मुद्रा में हाथ जोड़े और प्राण त्याग दिए।···"

वासना और स्त्री-गंध की ऊष्मा से आवेगशील दिखते हुए जनार्दन का इस तरह का एकाएक अपने पिता की स्मृति में आकुल हो उठना, किंचित् विलक्षण-सा लगा मीता को। उसने अंधेरे में ही अनुमान लगा लिया कि इस वक्त जनार्दन की आंखों में आंसू होंगे। एक बार उसका मन हुआ कि धोती के छोर से जनार्दन की आंखों को पोंछ दे, लेकिन फिर लगा कि यह उसकी भावाकुलता में विघ्न डालना होगा। धीमे से पूछा, "बाबूजी, मेरे लिए भी कुछ कहते थे?"

वह ऐसे बोला, जैसे डूबे हुए में से बाहर निकल रहा हो, "तुम जो इस वक्त मेरे पास हो, यह उन्हींका कहा हुआ है, मीता! अब तुमसे छिपाना क्या, जब पिताजी के सख्त बीमार होने का पत्र मैंने लिखा था और फिर भी तुम नहीं आईं, तो मुझे यही लगा कि अब तुम मेरे लिए अतीत की वस्तु हो चुकी हो। तुम्हारे पिताजी का वह पत्र, जिसमें उन्होंने रामनगर आकर बातचीत कर लेने को कहा था, मुझे बहुत ही अपमानजनक लगा था। इस बार मैं जो उनसे एक बार भी ठीक से बात नहीं कर सका, इसका कारण पत्र ही था। तुम, शायद, इस बात की कल्पना नहीं कर सकोगी कि असाध्य रुग्णता से ग्रस्त पिता के मल-मूत्र को अपने हाथों से साफ करते हुए किसी ऐसे आदमी के मन पर क्या बीत सकती है, जिसने इस आशा में

शादी की हो कि, मां के न होने से, अपने अंतिम समय के विषाद को झेलने में असमर्थ पिता की सेवा-टहल हो जाएगी।"

"जिंदगी में कई प्रसंग ऐसे बन जाते हैं, सुनील के बाबू, जब हम तो अपने-आपको निर्दोष समझते हैं, लेकिन दूसरों की बुराई हमसे हो जाती है। हमारे बाबूजी के स्वभाव में सबसे बड़ा दोष यह है कि वह सबको अपनी मर्जी से चलाना चाहते हैं। अपनी तरफ से उसकी भलाई तय करते हैं और अगर दूसरा उनकी इस भलाई को स्वीकार न करे, तो उससे बुरी तरह चिढ़ जाते हैं। तुमने जो वहीं के शारदा इंटर कालेज में उनके द्वारा लगाई जा रही नौकरी को नामंजूर कर दिया ना, तो मां से कहते थे कि वह अपनी दरिद्रता पर घमण्ड करने वाले बाप का नालायक बेटा है।···मेरी भलाई उन्होंने इसमें समझी थी कि मेरा विवाह तुम्हारे साथ हो जाए, लेकिन तुम्हारे जिद्दी स्वभाव से अप्रसन्न हो जाने से वह भलाई भी खटाई में पड़ गई।"

"जिद्दी शब्द का इस्तेमाल तुम्हारे पिताजी किया करते होंगे—तुम भी कर सकती हो। मैं सिर्फ स्वभाव ही कहना चाहूंगा। जीवन के अंतिम कुछ महीनों में वृद्धावस्था और असाध्य रोग से जर्जर जरूर हो गए थे हमारे बाबूजी, लेकिन मैंने उन्हें कभी विचलित होते नहीं देखा। कहा करते थे कि बुढ़ापे और रोग में अपने शरीर को वनस्पति के तुल्य समझ लेना चाहिए। मैं कल्पना नहीं कर सकता कि वैसी शारीरिक दुर्गति के बीच भी कोई आदमी लगातार घण्टों तक पूजा-पाठ कर सकता है। वो जब श्लोकों का उच्चारण करते थे, सुनने वाला कल्पना नहीं कर सकता था कि इस आदमी को कोई व्याधि भी है। तुम्हें एक बात बताऊं। इस वर्ष के पितृ-विसर्जन के पर्व पर हम लोग संगम गए थे। शायद, सप्तमी थी। पिताजी जी, तिल और पिण्ड हाथों में लिए कमर तक गंगाजी में चले गए थे।···और मुझे अच्छी तरह याद है, उन्होंने दादी के साथ-साथ मां को भी स्मरण किया था। और मां के नाम का उच्चारण जोर से करते हुए, फिर दोनों हाथों से प्रणाम किया था। कुछ ही देर पहले मैं स्वयं मां का पिण्डदान दे चुका था, लेकिन जब पिताजी ने 'शारदा' कहकर पुकार लगाई, तो मैंने इस बात को अनुभव किया कि वह मेरे द्वारा 'मां' कहे जाने से कहीं ज्यादा पूर्ण था।"

मीता चुपचाप पांव दबा रही थी।

जनार्दन कहता रहा, "उसी रात पिताजी ने तुम्हें बुला लेने को लिखा था और कहा था कि 'बेटे, पत्नी के बिना जीवन कितना अधूरा है, इसे आदमी तरुणाई में नहीं जान सकता।' उनका कहना था कि पत्नी अर्द्धांग है और अपना शरीर यदि दूषित हो जाए, तब भी हमें धारण किए रहना होता है।"

"तो क्या वो भी मुझे दूषित समझते थे?"

मीता की आवाज हालांकि धीमी ही थी, लेकिन अपनी प्रश्नवाचकता में वह जैसे सारे कमरे में चमगादड़ों के झुण्ड की तरह फैल गई।

"वो, मीता, तुम्हें अपनी बेटी के तुल्य ही समझते थे। दूषण से उनका मतलब तुम्हारी जिद और अलगाव से था। मैंने जब कभी कहा कि 'बाबूजी, जो औरत एक बेटे की मां बन चुकने के बाद भी साथ नहीं रहना चाहती, उसका मोह त्याग देने में ही भलाई है।' तो जानती हो, बाबूजी ने क्या जवाब दिया? कहने लगे कि 'संसार में उससे बड़ा भाग्यहीन कोई नहीं, जिसे उसकी पत्नी त्याग दे। कहीं कोई कमी तुममें है या तुम्हारे आचरण में शक्ति नहीं है।' मृत्यु से पहले की रात, उन्होंने फिर तुम्हें याद किया था और मुझसे कहा कि 'खबरदार, जब तक मीता अपनी ओर से तलाक न मांगे, उसे यह भूलकर भी न लिखना कि तुम उसे छोड़ देना चाहोगे। हमेशा उसके लिए प्रतीक्षा में रहना। मैं अब विदा होने वाला हूं, मेरे भाग्य में उसका सुख नहीं था। मेरे क्रिया-कर्म, तेरहवीं वगैरह से निबटते ही उसे ले आना – एक बार किसी भी तरह। फिर अपने आचरण से उसे वश में करना।' उनकी मान्यता यही थी कि पत्नी का संबंध सारे संबंधों से बड़ा है, क्योंकि एक यही नाता जन्म-जन्मान्तरों तक का शास्त्रों में माना गया है। बाबूजी कहा करते थे कि पत्नी को त्यागने में मां को त्याग देने से बड़ा पातक है।···और भी कितनी बड़ी बात वो कहते थे, सुनना चाहोगी?"

मीता का चेहरा उस अंधेरे में उसे बिल्कुल अपने पार्श्व तक आ गया लगा और वह अपने हाथों पर उठता हुआ-सा बोला, "बाबूजी कहा करते थे कि पत्नी यदि वेश्यावृत्ति करने लगे, तब भी वह त्याज्य नहीं है। उसके

सारे पाप और पुण्य पति से ही जुड़े हैं।"

मीता को लगा कि यह जनार्दन नहीं बोल रहा, उसके पिताजी बोल रहे हैं। उसे याद आया कि झूठी ही सही, बदनामी की अफवाहों के बीच जब वह घिरी हुई थी, जनार्दन के पिता ही थे, जिन्होंने जनार्दन के लिए 'हां' भरी थी।

जब जनार्दन ने कहा कि "अपने धार्मिक संस्कारों में कट्टर-पंथी होते हुए भी हमारे बाबूजी हृदय से अत्यन्त उदार थे और कहा करते थे, 'धर्म को वहीं तक धर्म समझो, जहां तक वह सहने की शक्ति देता हो। इस जीवन के हर दुःख-सुख-हर्ष-विषाद को शुद्ध चित्त से सहो।' और मैंने अपने अनुभव से भी यही जाना है कि जो कुछ जीवन में घटित होता जाए, उसे शांत हृदय से झेल जाने में ही मुक्ति है।"...तो वह फफक-फफककर रो पड़ी।

जर्नादन ने, उठकर सान्त्वना देने की जगह, अपना सिर फिर ज्यों का त्यों हथेलियों पर कर लिया, "जाति-बिरादरी के लोगों ने कितनी अफवाहें उड़ाई थीं कि तगड़े दहेज के लालच में पीताम्बर आ गए हैं, लेकिन यह तो तुम जानती ही हो कि बाबूजी ने क्या मांगा था? तुम्हें रास्ते में भी कहीं मैंने बताया था, शायद, कि बाबूजी ने ही मेरे कानों में यह मंत्र फूंका था कि पैसे वाली ससुराल से आंत जोड़े रखना गीदड़ की योनि में जाने के बराबर है। ब्राह्मण के बेटे को अपने द्विजत्व में ही रहना चाहिए—अपने पुरुषार्थ, अपनी वृत्ति से उपार्जित करके ही अपना भरण-पोषण करना चाहिए। वास्तविक परान्न-भोगी ससुर-गृह की रोटी खाने वाला ही होता है, ऐसा वह मानते थे और उन्हें यह डर था कि कहीं मैं तुम्हारे पिताजी की मैनेजरी वाले कालेज में ही नौकरी न करने लगूं। चूंकि तुम्हारे पिता-जी को भी कहीं न कहीं गलतफहमी थी कि बाबूजी दहेज के लालच में ोंगे, इसीसे उनका व्यवहार दाता का-सा रहा। विवाह की रस्म-अदायगी इसी बात ने बाबूजी को तुम्हारे पिता से विमुख कर दिया। तुम्हारे ताजी ने कहा था उनसे कि 'भट्टजी, अपने बेटे के लिए किसी तरह की ता न कीजिएगा।'...और बाबूजी ने कह दिया था कि 'जिसके भरण-पण और आजीविका की चिंता उसके ससुर को करनी पड़े, वैसे बेटे का

पिता होने से निःसन्तान मर जाना अच्छा है।'...बस, इसी बात पर बाद में तुम्हारे पिताजी ने जिद बांध ली कि जब तक बाबूजी जीवित रहेंगे, मीता को भेजा नहीं जाएगा। मैं फिर भी क्रोधी स्वभाव का हूं और मैंने कहा भी था बाबूजी से कि 'मीता अगर आपके जीते-जी इस घर में नहीं आई, तो बाद में भी नहीं आ सकेगी।' इसपर बाबूजी बोले थे कि 'बेवकूफ, जब तक मीता उस घर में है, मेरा आधा बेटा वहीं पड़ा है। ऐसी तुच्छ बात कभी मुंह से न निकालना।' सुनील को एक नजर देखने की कितनी इच्छा थी उनकी...यह क्लेश मेरे मन से, शायद, कभी नहीं जा सकेगा कि बाबूजी की मृत्यु से पहले तुम यहां नहीं आईं।"

"मैं बहुत दोषी हूं, सुनील के बाबू! इस बार की यात्रा में और आज रात जितनी बातें मैंने तुमसे सुनी हैं, और जो स्वरूप तुम्हारा देखा है—विश्वास करो यह सब पहले हो चुका होता, तो मैं बाबूजी की इस जिद के बावजूद चली आती कि 'अगर मीता इलाहाबाद चली गई, तो मैं समझ लूंगा, मेरे लिए मर चुकी बेटी।' मुझे लग रहा है, जैसे बाबूजी मुझे इस कमरे में बैठी हुई देख रहे हैं।"

थोड़ी देर दोनों चुप रहे।

थोड़े-से अन्तराल के बाद मीता बोली, "अब सोचती हूं, तो दहशत होती है कि मैं कितने बड़े अंधकार में थी। तुम्हें याद है कि जब तुमने मुझे पत्थर की अहिल्या कहा था? मैं सहम उठी थी कि शायद, तुम भी यही मानकर चल रहे हो कि जैसे अहिल्या को इन्द्र ने भ्रष्ट किया था, मैं भी भ्रष्ट रही हूं। पति के द्वारा शक की निगाह से देखा जाना कितना तकलीफदेह होता है, इसे कोई औरत ही समझ सकती है। मैं समझती हूं कि अगर कोई औरत भ्रष्ट भी हो, तो भी वह अपने पति के द्वारा भ्रष्ट औरत के रूप में देखे जाने की तकलीफ को बर्दाश्त नहीं कर पाएगी।... अगर वह बर्दाश्त करेगी, तो नफरत करती हुई करेगी—अपने-आपसे भी।"

"अब इस वक्त तुम बुरा न मानना, मीता! मैं तुमसे फिर कहता हूं कि तुम्हारे सारे गुण-दोष मेरे हैं। उन दिनों सचमुच तुम्हारा स्वभाव

इतना विचित्र और क्षुब्ध करने वाला था कि अक्सर मैं विचलित हो उठता था। जब भी मैं सम्पूर्ण रूप से तुम्हारे नजदीक होने की कोशिश करता, यही लगता कि तुम बहुत फासले पर हो। मेरे प्रति तुम्हारा वह अलगाव बहुत कष्टदायी होता था।"

"पहले, शायद, बता नहीं पाती। अब मैं तुमसे कह सकती हूं कि वह मेरी जिन्दगी का वास्तव में सबसे नाजुक दौर था। मुझे यह स्वीकार कर लेना चाहिए, तुम्हारे सामने, कि संयोग से ही सही, मैं रावत के प्रेम में पड़ गई थी और अन्तर्जातीय शादी करने को भी तैयार थी।...लेकिन जिस तरह से वह एक किनारे हट गया, उसके जो भी कारण रहे हों, मुझे एक धक्का-सा लगा। मैंने अपने-आपको अपमानित अनुभव किया। छोटी जगहों का सबसे बड़ा दुख यही होता है कि लोग दूसरों की जिन्दगी में बहुत दिलचस्पी लेते हैं। कुछ ने तो यहां तक अफवाहें उड़ा दी थीं कि मैं बिना शादी किए ही मां बनने वाली हूं। सच पूछो, तो मेरे मन पर, मेरे दिमाग पर—मेरे रोम-रोम पर इस बात का दबाव था कि ये अफवाहें तुम तक भी जरूर पहुंची होंगी और हो सकता है, तुम तक शादी के बाद पहुंची हों। इसी बीच हमारे बाबूजी के इस खब्त ने भी मन में कड़वाहट भर दी कि तुम अपने जिद्दीपन की वजह से ही दरिद्रता की जिन्दगी को पकड़े हुए हो।... मैं अब जान गई हूं कि वह सब मेरे ही मन का वहम था कि तुम भीतर ही भीतर मेरे प्रति शक्की हो। बाद में, जिस तरह तुमने चुप्पी साध ली एक लम्बे अरसे तक, उसने और चिढ़ा दिया मुझे।"

"अफवाहें मुझ तक सचमुच शादी के बाद ही पहुंची थीं। और यही बुरा हुआ। हम जो लोग संस्कारों की एक सीमित दुनिया में जीते हैं, एक खास किस्म का अहंकार हमारे भीतर हमेशा भरा रहता है। जो खुद वेश्यागामी हो, वह भी अपनी पत्नी को सावित्री की ही शक्ल में देखना चाहता है। मैंने सिर्फ पिताजी के कह देने-भर से ही रिश्ता स्वीकार कर लिया था। उन्होंने ही तुम्हें देखा था और पसन्द किया था। मैं कह नहीं सकता कि अगर अफवाहें शादी से पहले ही मुझ तक पहुंची होतीं, तो मेरा रुख क्या होता, हालांकि अपने बाबूजी की बात टालना मेरे लिए सम्भव नहीं होता। मां का देहान्त जब हुआ था, मैं मुश्किल से आठ नौ साल का रहा

होऊगा। बाबूजी ने जैसे मुझे पाला, उसे मैं शब्दों में बता नहीं सकता। एक तो लगातार पांच बच्चों के जन्म और मरण के दुखों से जर्जर उनका मन और फिर रोगी शरीर। इसके ऊपर, सिर्फ वृत्ति के सहारे चलने वाली जीविका। बाबूजी कहते रहते थे कि 'अगर तुमने ससुराल से कभी रुपये-पैसे की मदद ली, या ससुर का सहारा लिया तो वो लोग यही समझेंगे कि हम लोगों ने लालच में ही रिश्ता मंजूर किया था।'···मनुष्य का जीवन सचमुच बहुत विलक्षण होता है, मीता! छोटे-छोटे लोगों को भी अपनी जिन्दगी बहुत बड़ी-बड़ी समस्याओं से घिरी हुई लगती है। अपना छोटा-सा दर्प चक्रवर्ती सम्राटों का-सा मालूम पड़ता है।···लेकिन इतना मैं कह सकता हूं कि तुम्हारे लिए मेरे मन में खीझ हो सकती है, नफरत जैसी चीज तब भी नहीं थी।"

मीता जिस अनुराग के साथ पांव दबा रही थी, उसका शरीर सारे कमरे में भर गया-सा लग रहा था, जैसे जिधर भी हाथ बढ़ाए उसीसे टकरा जाएगा।

उसने अपने हाथों को खोलकर, धीमे से मीता को अपनी दाईं बांह पर लिटा लिया, तो वह बच्चों की तरह गले से लग गई।

पर्वत से फूटकर जैसे कोई नदी पहली-पहली बार बहे, मीता की भावाकुलता कुछ उतनी ही आवेगपूर्ण थी। उसे लगा कि यात्रा-भर में भी जो यह औरत इतनी सरल-सी दिखती चली आ रही थी, वह शायद पानी के जमकर ठोस बर्फ बन जाने की-सी मनःस्थिति थी।

उसने, जैसे ही मीता के सुबकने का आवेग कुछ धीमा पड़ा, उसे पूरी तरह से अपनी बांहों में आबद्ध कर लिया।

४

"तुम सोचते होगे, वहां तुमसे मैं बोलती भी नहीं थी। कितना कठिन होता है अपने ऊपर बीतते हुए को दूसरों से कहलवाना, यह जितना मैंने पिछले कुछ दिनों में जाना, सुनील के बाबू, पहले कभी नहीं जाना था। मेरे मन के भीतर बादल से भरे हुए थे और वह आकाश की तरह घुमड़ता था तुम्हारे लिए कि इतने दिनों के बाद तुम आए हो और इसी बार मेरी जिंदगी की अन्तिम फैसला हो जाना है कि कैसे बीतना होगा इसे। मैं तुमसे कहना चाहती थी कि अगर तुमने अपने साथ ले जाकर मुझे यही महसूस कराना है कि मैं भ्रष्ट थी, मुझमें किसी घर वाली और बहू या एक की मां हो चुकने का भी कोई विवेक ही नहीं है—तो मुझे नहीं आना है। अब सोचती हूं कि तुम्हारे साथ-साथ रह गई होती, तो मेरे सारे भ्रम दूर हो चुके होते, लेकिन तुमसे दूर रहने में हर वहम जड़ें डालता चला गया। तुम्हारे मन में भी गांठें जरूर हैं कि शादी से पहले मैं किसी और से प्रेम करती रही थी—ऐसा मैं सोचती थी और सोचती थी कि तुम्हारे भीतर की यह गांठ हमेशा मुझे कोंचती रहेगी। मैं तुम्हारे साथ सो रही होऊंगी और तुम्हारे चेहरे पर, तुम्हारी आंखों में, तुम्हारे सारे जिस्म में यही वहम रेंगता होगा कि शायद, यह औरत अपने प्रेमी के साथ भी···। तुम्हारे साथ जो मैं ज्यादा अरसे तक नहीं रह सकी, इसका सबसे बड़ा कारण यही था। मायके की आरामतलब जिन्दगी ने मुझे और शह दी।···लेकिन तुम विश्वास करो, यह सुनील एक-एक दिन बढ़ता जाता था और डरने लगी थी कि एक दिन यह 'मेरे बाबू

कौन है, कहां है ?' पूछने वाला हो जाएगा। मैं लगातार यही सोचती रहती थी कि मेरी तकलीफ को कोई नहीं समझेगा। तुम समझते रहोगे कि मैं तुम्हारे साथ नहीं रहना चाहती और बाबूजी समझते रहेंगे कि रहने, खाने-पीने-पहनने की सारी सुविधाएं इसे दी जा रही हैं और क्या चाहिए। बच्चे की ढंग से परवरिश और पढ़ाई का बंदोबस्त भी हो ही जाएगा—हमारे लिए क्या ठीक होगा, इसे तय करने की सारी जिम्मेदारी जब दूसरे लोग सम्भालते हैं, तब जिन्दगी बहुत मुश्किल हो जाती है।"

"दरअसल सारी दिक्कतें तब पैदा होती हैं, नीता, जब पति या पत्नी के पास कुछ ऐसा हो, जिसे एक-दूसरे से छिपाकर रखने की जरूरत हो।"

"तुम ठीक कहते हो, सुनील के बाबू!"

"मैं तुमसे सिर्फ इतना कह सकता हूं, नीता, कि शायद, मैं बहुत सहनशील न हो पाता। यह मेरे बाबूजी की दीक्षा है, जो हमेशा यही कहा करते थे कि दूसरे को हमेशा उसकी परिस्थितियों में रखकर ही देखा करो। किसीको अपने से हीन समझकर मत चलो, नहीं तो ऐसे भी बहुत-से लोग होंगे, जिनकी तुलना में तुम अपने को हीन समझते रहोगे। तुम विश्वास करो कि यदि शादी के बाद के दिनों में मिले हुए थोड़े-से एकान्त के दिनों में तुमने रावत का जिक्र मुझसे खुद ही कर दिया होता, तो थोड़ा-सा बेरुखापन तुमने मुझमें देखा होगा, वह भी न देखतीं। मैंने अगर यह जान लिया होता कि तुम्हें मुझसे अलगाव नहीं, सिर्फ अपनी उस समय की परिस्थिति या मनःस्थितियों के कारण तुम परेशान हो और जिंदगी के नये मोड़ के साथ 'एडजस्ट' नहीं कर पा रही हो—मेरा रुख और भी आत्मीय होता। इतना मैं जरूर जानता था कि पैसे वाले पिता के यहां से दैनंदिन अभावों से घिरे हुए हमारे घर में आने पर कुछ ऐसा ही सोचती होओगी कि रावत वाले लसिले में अफवाहें फैल जाने से जल्दबाजी में—बिना जाने और [illegible] ो सहूलियतों को देखे ही—तुम्हारी शादी मेरे साथ कर दी गई है और सीलिए तुम्हारे मन में खिन्नता और कुढ़न है। शिक्षा की दृष्टि से तब मैं तुमसे फिसड्डी ही था। तुम एम० ए० कर चुकी थीं, मैं प्राइवेट देने की यारी कर रहा था। कोई भी आदमी जब किसी स्त्री को उसके शरीर से ाना चाहता है, तो उसकी आत्मा के साथ पाना चाहता है—मैंने पत्नी और

स्त्री के रूप में जो पहली-पहली बार जाना, उसमें तुम्हारा रुख इतनी उदासीनता का था कि लगता था, जैसे एक रस्म को तुम मजबूरी में झेल रही हो। मुझे सही रूप में पत्नी और स्त्री तो, शादी से चार वर्षों के बीत चुकने पर, तुम सिर्फ अब लग रही हो, मीता ! और हालांकि मैं एक बच्चे का बाप बन चुका हूं, लेकिन ऐसा लग रहा है कि यह पहली सुहागरात है···"

"अरे, भई, तुम तो हद दर्जे के बेहया आदमी हो। माथे पर का त्रिपुण्ड और धोती-कुरता पहने तो तुम साक्षात् सनत्कुमार जैसे ब्रह्मचारी ब्राह्मण दिखाई देने की कोशिश करते हो, लेकिन तुम्हारा सिर्फ बाहरी भेष ही ब्राह्मण का है···सुनो, जरा तुम अपना घुटना ठीक कर लो।···और सुनील को एक बार और देख लिया जाए क्या ? बच्चों को बुखार कपटमृग की तरह छलता रहता है।···"

"हम दोनों जगे हुए हैं। उसे बुखार आया, तो बेचैन होकर करवटें बदलेगा। वैसे मैं सोचता हूं, लम्बे सफर की वजह से 'टेम्प्रेचर' हो आया होगा। खांसी-वांसी तो कुछ है नहीं, जिससे ठण्ड लग जाने या निमोनिया का डर हो। हां, तुम मेरे त्रिपुण्डी ब्राह्मण होने की बात कह रही थीं ना ? तुमने तो धर्मशास्त्र और पुराण वगैरह पढ़ रखे हैं—इसे 'ब्रह्मानन्द सहोदर' का दर्जा देने की कल्पना ब्राह्मणों ने ही की थी ना ? अच्छा, एक चीज बताओ। रावत ने तुम्हें कोई दीक्षा नहीं दी थी ?"

"धत् ! अरे, तुम मर्द लोग लाख अपने उदार और विश्वासी होने का दावा करोगे, लेकिन औरत की तरफ से इतने शक्की होते हो कि शक तुम लोगों के मन में ठीक वैसे ही भरा रहता है, जैसे सांप के माथे में जहर। समय कितना बड़ा फर्क डाल देता है। इस यात्रा में किस तरह की बातें तुमने मुझसे की थीं, लगता था, जैसे मेरी मां बोल रही है और जैसे अपनी मां से कह लेती थी, वैसे ही अब अपने सारे सुख-दुःख, सारे पाप-पुण्य तुमसे भी कह सकती हूं। जब शादी के बाद पहली बार मायके लौटी थी, तो न जाने क्या मेरे चेहरे पर और मेरी आंखों में रहा होगा कि मां ने मुझे रात को अपने साथ सुलाया था और मेरे माथे पर हाथ फेरती हुई बोली थी कि यह सब ठीक नहीं है। औरत को अपना पूरा साथ पति को देना होता है, तभी उनमें सही गांठ जुड़ती है।' हालांकि उन पन्द्रह-बीस दिनों के तुम्हारे

जरूर थी कि रावत अगर 'कोर्ट मैरिज' के लिए भी कहेगा, तो करूंगी। जब पता चला कि वह दूसरी लड़की से शादी करना चाहता है और मुझसे मिलने में भी कतराता है, तो मुझे लगा कि मेरी कल्पना की दुनिया नष्ट हो चुकी है और अपने इस तरह से नष्ट हो जाने में मैं सिर्फ अकेली हूं—कोई मेरे साथ नहीं। जिस तरह से रावत ने एकाएक रुख बदला, उससे मैंने खुद को बेहद अपमानित और 'डिस्टर्ब्ड' महसूस किया था।...और अपनी ही कुढ़न, अपना ही 'डिफीटेड ईगो' था जो मेरे अस्तित्व में खून की तरह दौड़ता था। कहां मैं समझती थी कि इसे रावत अपना सौभाग्य समझता होगा कि मैं उससे प्रेम करती हूं और कहां उसने एकाएक ऐसे कन्नी काट ली, जैसे मुझमें कोई बहुत बड़ी कमी दिखाई दे गई हो। मैं उन दिनों बहुत बड़ी मानसिक टूटन में थी। आत्महत्या कर लेने की बात भी सोचती थी। सोचती थी कि अपने प्रेम में जलील होने की यह तकलीफ है, उसे किसी भी दूसरे को समझाया नहीं जा सकता।...लेकिन हम औरतों के स्वभाव में एक चीज तो होती ही है। भावनाओं की सारी उथल-पुथल के बीच भी व्यावहारिक जिंदगी पर भी आंख लगी रहती है। मैं भी जानती थी कि आत्महत्या न कर पाने पर अगर जिंदगी-भर कुंआरी ही बैठी रह गई या कि फजीहतों से भरी जिंदगी को ले बैठी, तो यह और बड़ा मरण होगा। इसीलिए शादी की बातें जब चलाई गईं, तो मैं सचमुच पत्थर की मूरत—तुम्हारे कहने को अहिल्या ना?—बस, मूरत ही बनकर बैठ गई। सोचती थी, शादी के बाद, शायद, कोई रास्ता निकल आए, लेकिन शादी इतनी जल्दी में हो गई कि मुझे वक्त नहीं मिला। आज भी सोचती हूं कि मुझे रावत के सदमे से बाहर निकल आने का अवसर मिला होता, तब शादी होती, तो मेरा व्यवहार तुम्हारे साथ वैसा बेरुखा हर्गिज नहीं हुआ होता।"

"मेरे साथ? तब क्या जरूरी था कि मेरे ही साथ शादी होती?"

"पहले, शायद, नहीं ही कह पाती, सुनील के बाबू! आज कह सकती हूं कि मेरी शादी सिर्फ तुम्हारे साथ ही होनी थी। ऐसे क्षण कितने विचित्र होते हैं, जबकि हमें लगता है कि बस, सिर्फ यही वक्त था कि हम यह बात कहते। सुनो, तुम जरा ढंग से पांव समेटा करो। घुटना मार देते हो बच्चों

की तरह।···मैं तुम्हें बता रही थी कि मां से जब मैंने बताया था, तब भी मुझे लगा था कि किसीने मेरी तकलीफ को समझा है और बिल्कुल ठीक वक्त पर, ठीक बात पूछी है। जब मैंने मां से भी खोलकर कह दिया कि रावत से कोई प्रेम-व्रेम न रह जाने पर भी मैं नई जिंदगी से अपने को जोड़ नहीं पा रही, तो उसने पंडितों की तरह कहा था कि 'बेटी, पुरुषों को अपने पितरों के श्राद्ध पर, लेकिन स्त्री को अपनी जिंदगी-भर 'पिण्डस्थाने पिण्डो, दीपस्थाने दीपो' करते रहना पड़ता है। जो तेरे लिए पिण्ड के स्थान पर था, वह छूटा, अब तुझे दीपक के साथ होना है।' मां यह भी कहा करती थी···"

"तुम्हारी मां का स्वभाव हमारे बाबूजी के स्वभाव से मिलता है वैसी ही शांतचित्तता, वैसा ही अनुराग—मैं तो उन्हें सास समझकर चलना ही भूल जाता हूं। लगता है, मां हैं। सुनो, मीता, कहीं ऐसा तो सम्भव नहीं कि हमारे बाबूजी तुम्हारी मां से प्रेम करते रहे हों? वैसे ही, जैसे तुम्हारे पिताजी रावत की मां से—लेट एज में?"

"हट, बदमाश कहीं के! अच्छा, सुनो। वक्त क्या हो गया होगा? आज रात-भर जागते रहोगे क्या? तुम तो समाधि में जैसे बैठ जाते हो। सुनील जाग गया, तो फिर मैं उसीके साथ जाकर सो जाऊंगी।"

"धौंस दिखा रही हो···"

"सुनो, एक चीज है। हमें सुनील को कुछ बड़ा हो जाने देना चाहिए।"

"यह तुम नहीं बोल रही हो—सरकार का 'फेमली प्लानिंग विभाग' बोल रहा है।"

"जिस समय तुम अपने बाबूजी के बारे में बोल रहे थे, लगता था, कोई ऋषिपुत्र धरती पर आकर विलाप कर रहा है। मैं तो सोचती थी, चलो छुट्टी हुई, लेकिन तुम तो पार्थिव-पूजा से उठते ही भोग लगाने वाले ब्राह्मण हो!"

"मीता, तुम्हारा यह हंसना—फिर इस [illegible] को कहने दो कि यह प्रभु-कृपा के तुल्य है। हमारे दादाजी कहा करते थे कि आदमी ढेर-सारे भोजन से नहीं, प्रभु-स्मरण से तृप्त होता है। [illegible] रहा है कि एक हजार स्त्रियों में से [illegible]

हंसी को सुनने में है। हमारे बाबूजी…"

"बेचारे बाबूजी का नाम तुम ऐसे वक्त में ले रहे हो कि मैं तो म शरम के दबी जा रही हूं।"

"मैं सोचता भी नहीं था पहले, कि तुम इतने मजाकिया स्वभाव व हो। जब देखता था, अपनी गंधर्वजात की औरतों की जैसी देह में से तु सिर्फ बेरुखापन बिखेरती हुई-सी दिखाई देती थीं। रास्ते भर भी जैसी गुम सुम तुम चलती चली आई, मैं लगातार इसी डर में रहा कि तुम यह मान कर चल रही हो कि तुम्हें जबरदस्ती ले जाया जा रहा है।"

"वह तुम नहीं समझ सकोगे। रस्सी को सांप समझकर उससे दूर भागने के बाद, उसे रस्सी के रूप में जानने का मोह-भंग कैसा होता है? मेरा मोह-भंग इससे बड़ा है। हां, वह बात छूट गई थी। जिस तरह से तुमने अब पूछा था कि रावत ने मुझे कोई दीक्षा दी या नहीं, यही बात कहीं अगर तुमने शादी के बाद उन दिनों में कहीं पूछ ली होती, तो अनर्थ हो गया होता। मैं पहले ही इस बात से पीड़ित थी कि मेरी सच्चाई, मेरी तकलीफ और मेरे चोट खाए अहंकार को कोई नहीं समझेगा। तुम भी अफवाहों में से ही गुम-सुम अपने मन में कुछ लिए बैठे होगे। ऐसे में अगर कहीं तुमने उस रात मुझसे ऐसा पूछ लिया होता, जब तुम पत्थर की अहिल्या कहते हुए ऐसे उठ गए थे, जैसे किसी ताड़का ने यज्ञ में बाधा डाल दी हो—मैं आज भी डरती हूं कि शायद, मैं तड़ाक से यह कह देती कि 'हां, मेरा रावत के साथ सब कुछ रह चुका है और मैं उसके बच्चे की मां भी बनने वाली थी।'…सुनील के बाबू, कभी-कभी हमारे भीतर का हाहाकार इतना बड़ा हो जाता है कि आत्महत्या भी छोटी चीज लगने लगती है।"

"लो, एकाएक किन्नरियों की तरह हंसते-हंसते तुम सचमुच की अहिल्या की तरह रोने लगीं? मैं तुमसे सिर्फ एक बात कहना चाहता हूं कि अब कभी तिल-भर भी तुम्हारे प्रति वहम नहीं रखूंगा। पत्नी के प्रति वहम रखना—और वहमी सिर्फ एकतरफा—यह अपनी जिंदगी को खुद ही नरक बना लेने के अलावा कुछ नहीं। मैंने पहले भी सोचा था, तो इसी नतीजे पर पहुंचा था कि उस उम्र में प्रेम का होना स्वाभाविक है और स्वाभाविक है कि वह उसीसे होगा, जो आईने की तरह अपने सामने हो।"

"तुम इस वक्त सचमुच वैसे ही 'बोर' कर रहे हो, जैसे कोई औरत आईने के सामने शृंगार करने बैठ जाए और सुबह की चाहे शाम हो जाए लेकिन उठने का नाम न ले।"

"लो, तुम किसी तरह हंसीं तो। अच्छा, सुनो, वह शिवचरन रिक्शेवाले की बेटी आई थी ना, क्या नाम था उसका? सवित्तरी—तुमने उसे आने को कहा है क्या? चौका-बरतन का अभ्यास तो तुम्हें होगा नहीं। ठीक-ठाक वैसे अगर ले ले···"

"इस वक्त, अचानक उसकी याद बहुत आ गई तुम्हें? उसके बाप से भी ऐसे बतिया रहे थे, जैसे असली ससुर वही हो। हमारे बाबूजी से तुम कन्नी काट-काटकर निकल जाया करते थे।"

"तुम तो मजाक में कह रही हो, मीता! तुम्हारे बाबूजी से सचमुच बातें करने को मन नहीं होता था। कब, किस बात पर वो बिच्छू की तरह डंक मार बैठेंगे, कुछ पता नहीं। हम लोगों के वहां से विदा होने के पहले दिन ही कैसा रुख था उनका? उनके सख्त चेहरे को देखकर ऐसा लगता था, जैसे तुम्हें मैं घर नहीं, अनाथालय की दिशा में ले जा रहा हूं। यह सच है, मीता! सुविधाएं यहां नहीं हैं। हो सकता है, कुछ दिनों तक बहुत परेशानी हो घर चलाते हुए, लेकिन अगर तुम सहारा दोगी, तो दिन कट जाएंगे। फिलहाल मैं तीन-सवा तीन सौ के आस-पास ही कमा पाता हूं, लेकिन मुझे उम्मीद है कि 'थीसिस' पूरी हो जाने पर मैं अपना पूरा वक्त लगा सकूंगा। आज जिन अग्रवाल साहब के यहां गया था, उनका काफी बड़ा पब्लिकेशन और प्रेस का काम है। डी० फिल० मिल जाने पर मैं उम्मीद कर रहा हूं कि किसी डिग्री या कम से कम इण्टर कालेज में जगह मिल जाएगी। हां, याद आया, अग्रवाल साहब की एक खांडसारी की मिल फूलपुर में है। वहां उनकी व्यवस्था में एक हाईस्कूल भी चलता है।··· लेकिन फिलहाल मुझे अपनी थीसिस का काम पूरा कर लेना चाहिए।"

"तुमको तो औरतों के साथ बकवास करने की कला पर पी-एच० डी० मिलनी चाहिए थी। मैं तो सोचती हूं, दिशा खुलने का वक्त होने को होगा। ये सारी वकालत की बातें सुबह होने पर भी कर सकते हो। आई हूं, तो यह विश्वास लेकर ही आई हूं कि घर संभालना है। अभी महरिन

रन लगाने की कोई जरूरत नहीं है। कम से कम बीस-पचीस तो मांगेगी। त्योहारों पर कपड़ा-लत्ता अलग से मांगते हैं ये योग। तुम रास्ते में ला रहे थे कि जो वकील साहब हैं…"

"निगम साहब की बात कर रही हो?"

"हां, वही, जिनके स्कूल में तुम इन दिनों पढ़ाते हो—तुम बता रहे थे, कोई कन्या पाठशाला वो चलाते हैं? वहां मुझे काम नहीं दिला सकते हो?"

"काम के लिए तो, खैर, मुझे कोई सिफारिश नहीं करनी पड़ेगी। निगम साहब खुद ही बहुत प्रेमी व्यक्ति हैं। फिर तुम जैसी खूबसूरत तो उनके यहां कोई भी टीचर नहीं, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूं।… लेकिन तुम अभी अपने लिए किसी काम की बात सोचो ही मत, मीता! एक तो इससे मुझे मानसिक क्लेश होगा। दूसरे, सुनील हमारा अभी इतना छोटा है कि तुम्हारा पूरा वक्त इसीके लिए जरूरी है…"

"बातें तुम बहुत बड़ी बना ले जाते हो। यों तो दिखाने को कहोगे कि सुनील के लिए ही तुम्हारा पूरा वक्त चाहिए और सारी रात अकेले चाट गए हो। एक बार को उसे दूध पिलाने का भी मौका नहीं मिला—बातें ही बातें करते चले जाओगे।"

"अरे, भई, तुम सुनील को और मुझको अलग-अलग मानकर क्यों चलती हो? आखिर मैं भी तो बिना मां-बाप का बच्चा ही हूं।"

"अब बस करो। बातें बनाने में तो तुम हमारे यहां की चम्पा नाउन को भी मात कर देते हो। सुनो, तुम कल कहीं से एक छोटी-सी भगवती मां की प्रतिमा जरूर ले आना…"

"अभी कुछ ही देर पहले तो तुम कह रही थीं कि आदमी को वक्त-बेवक्त का ध्यान रखकर ही किसीका नाम लेना चाहिए।"

"मिट्टी पड़े मेरी जबान पर, याद ही नहीं रहता। तुम्हारे साथ सोई… और मन करता है कि इस बात को ही भूल जाऊं कि इस वक्त दुनिया… कुछ और भी है, लेकिन रह-रहकर, याद आ जाता है कि अब बाबूजी… यह कहने का मौका नहीं देना चाहिए कि मैं तो पहले ही कहता था।… तो वो कभी तीर्थ-यात्रा के लिए नहीं निकले, लेकिन मेरा मन कहता है… इस साल माघ मेला देखने और संगम नहाने के बहाने वो मां को लेकर…

धमकेंगे। हमारे यहां जगह कम देखेंगे, तो यों कहते हुए अपने किसी जान-पहचान वाले के यहां जाने की बात करने लगेंगे कि 'मीता बेटा, बेटी के घर तो यों भी ठहरना ठीक नहीं कहा गया है शास्त्रों में···' रावत की मां से जब से दोस्ती बढ़ी है उनकी, तब से घरवालों के प्रति कुछ ढीले हो गए हैं।"

"शेक्सपियर ने कहा है कि बुढ़ापे का प्रेम और ज्यादा प्रबल होता है···"

"अब बात शेक्सपियर कहते हों, या खुद तुम—है तो ठीक। मैंने कई बार देखा है कि जब रावत की मां घर में आई हुई रहती थीं, तो अक्सर घर के भीतर चले जाते थे और चाय-नाश्ते में कुछ अच्छी चीजें बनें, इसकी चिन्ता करते थे।"

"अब बताओ, ऐसे प्रेमी पिता की पुत्री होकर, तुम न प्रेम करती, तो और कौन करता? अब वहम न करने लगना। मुझे गहरी नींद मालूम पड़ रही है।"

"अच्छा, आखिर तुम बहानेबाजी पर उतर आए ना? मैं थोड़ी देर को सुनील के साथ सो जाती हूं···"

"उसके बाद क्या फिर मेरे साथ सोओगी?"

"हां, जरूर। ऐसा करना, जैसे ही सुबह खुले—अपना बिस्तर बरामदे में लगा लेना और मेरा इन्तजार करना। तुम तो हद हो। दुनियाभर की बातों को बोरों में भरकर बैठे लगते हो। ये लो, सुनील भी जग गया।"

"बड़ा अक्लमन्द बेटा है तुम्हारा। वक्त-बेवक्त की सही पहचान इसे ही है।"

"अब चिल्ला मत, छोकरे! सारी रात तेरे बाप की बातों ने चाट ली, बाकी बची हुई बेटा 'माउथ-ऑरगन' बजाते हुए बिता देगा। तुम लोग तो घोड़े बेच चुकने वालों की तरह खर्राटे भरने लग जाते हो। अरे, दूध पीकर तो मेरा राजा बेटा भी फिर सो जाएगा। मां की चिन्ता आखिर बेटा ही तो करेगा···"

५

ठीक सामने मकान के बीच-बीच में नीम और पीपल के दरख्त हैं। सर्दियों की धूप, सुबह-सुबह, उनपर चिड़ियों के झुण्डों की तरह बैठती हुई-सी आती है।

मोहल्ले के छोटे-छोटे मन्दिरों से आती हुई शंख तथा घण्टों की ध्वनियों से भी पहले, सन्त एन्थोनी कान्वेंट की मन को अनुराग में आबद्ध कर लेने वाली लयबद्ध घण्टे की आवाज से ही वह जाग उठी थी, लेकिन जनार्दन गाढ़ी निद्रा में था। सुनील भी। उसने दोनों को बारी-बारी से देखा और धीमी मुस्कराहट से भर गई।

वह गीले बालों को सुखा लेने की कोशिश में बरामदे के ठीक किनारे खड़ी थी कि ठीक इसी वक्त उसे कोई लड़की अपनी ओर आती दिखाई दे गई। वह अभी काफी दूर थी। उसके साथ एक कम उम्र लड़की और थी। सहसा यह मान लेने का कोई कारण नहीं हो सकता था कि वह मान ले, दोनों इसी तरफ आ रही हैं। सिर्फ आंखों के आपस में मिलते ही कौंधने वाली चमक थी, जिससे मीता ने अनुभव किया था कि वह सवित्तरी ही होगी। औ उसके पास आएगी।

गलियों में से दूध दुह लिए जाने के बाद चरने को ले जाई जाती हुई गा गुजर रही थीं। आस-पास के घरों में से अपने-अपने घर के कामों में व्य दिखती हुई औरतों को देखना, उसे लग रहा था, वह इस मोहल्ले से अप

"तुम हमारे यहां काम करने के लिए दोपहर को ग्यारह बजे के बाद कभी भी और रात को आठ-नौ बजे तक आ जाया करना। और हां, सुनो! जिन दिनों तुम माहवारी पर रहा करो—काम पर आने की जरूरत नहीं है। पांच दिनों तक। मैं जरा परहेज करती हूं।"

मीता ने सारी बात धीमे से मुस्कराते हुए और स्नेह के साथ ही कही थी, तो भी एक क्षण को सवित्तरी का चेहरा थोड़ा परिवर्तित हो आया। मीता के कहने तक में वह उठ खड़ी हुई थी। बोली, "ठीक है, बहूजी! मगर आपके चौका-बरतन का हर्जा नहीं होगा, यह गनेशी आकर कर जाया करेगी। इसके काम में अभी सफाई उतनी नहीं है।"

"अरे, सवित्तरी! ऐसी कौन-सी बात है! कौन हमारा बहुत बड़ा परिवार है, जो दिक्कत होगी।"

मीता कुछ देर सवित्तरी और उसकी छोटी बहन को जाते हुए देखती रही। किसी नये शहर में आ पहुंचने का एक जो अजनबीपन होता है, उसने अनुभव किया कि सवित्तरी ने उसे अपनी संक्षिप्त-सी उपस्थिति से ही तोड़ दिया है।

सवित्तरी आंखों से ओझल हो गई, तो मीता अन्दर कमरे में गई और एक बार उसने सुनील को देखा, उसे कम्बल ठीक से ओढ़ाया, फिर जनार्दन के मुंह पर से चादर खींचती हुई बोली, "कुम्भकरन महाराज, उठोगे भी!"

"आओ, मन्दोदरी, आओ।" कहते हुए जनार्दन ने एकाएक ही उसे अपने ऊपर खींच लिया और फिर खुद ही अफसोस में होता हुआ-सा बोला, "देखो, शास्त्रों में जो कहा गया है कि रूपवती स्त्री पुरुष की स्मृति और वाणी को अपनी हथेलियों की रेखाओं में समेट लेती है, ठीक ही कहा होगा—मुझे यह भी याद नहीं रहा कि मन्दोदरी तो कुम्भकर्ण की भाभी का नाम था। अच्छा, तुम बता सकती हो कि कुम्भकर्ण की घरवाली का नाम क्या था?"

मीता मारे हंसी के दोहरी हो गई। बोली, "तुम शास्त्री लोग धोती-कुरते में जरूर रहते हो, लेकिन बातें लोफरों से भी गई बीती करते हो। अब

भी या नहीं ? एक बार की बनी चाय ठण्डी भी हो चुकी, तो
और उसकी बहन को पिला दिया। अब तुम उठो और कुल्ला करो।
देती हूं, चाय पीकर, नहा-धो लेना। यह गुन्नी साला भी नहीं
कितना सोता है।"
तुम्हारा सुलाया जल्दी उठ नहीं सकता। यकीन मानो, अगर तुम कुम्भ-
गुलाती होतीं, तो वह महाराक्षस छै महीने की जगह छै सालों के
ज करता। तो सवित्तरी को क्या कहा तुमने ? कितने रुपये मांगती

"तुमने उसे देखा नहीं, इसीलिए योंही तड़ाक से पूछ ले रहे हो। देख
होता, तो कहते—चाहे मन ही मन में—कि मीता, यह सौ-सवा सौ भी
ी हो, तो कम है।"
मीता के मुस्कराने में विनोद था, लेकिन फिर भी वह कुछ झेंप-सा गया,
न तुरत ही बोला, "ऐसा तुम मेरी वजह से कह रही हो या कि तुम्हें
े ऊपर ही विश्वास नहीं है ?"
"अरे, भई ! तुम तो शास्त्री ठहरे। शास्त्रों में तो यह भी लिखा होगा
चन्द्रकलाओं का निवास परकीया स्त्रियों में ही होता है !"
"लेकिन सवित्तरी तो अभी कुंआरी ही होगी ना, मीता ? उसका
ाप शिवचरन तो यही बताता रहा था। तब वह परकीया कैसे हुई ?"
"अब, छोड़ो यह किस्सा। चलो, उठो ! आज तुम्हारी भी छुट्टी है।
घर को थोड़ा संवार लेंगे। मैं तो इतना जानती हूं कि कुत्ता-घर का कपास
जिसे कहते हैं, वैसी ही वह लगती है। उसका बोलना, बोलते में उसके चेहरे
और आंखों में धूप की तरह उगती हुई चमक—वह तो सचमुच किसी बड़े
घर की बेटी लगती है। बाप तो उसका ठिगने-से कद का और यों ही है,
वह अच्छे कद की और अच्छी-खासी सुन्दर है। उसकी छोटी बहन में उसमें
कोई मेल नहीं। छोटी अपने बाप पर गई लगती है। हो सकता है, सवित्तरी
की मां लम्बी और खूबसूरत रही हो !"
"क्यों, हो तो यह भी सकता है कि सवित्तरी का बाप ही लम्बे कद
का और खूबसूरत किस्म का आदमी रहा हो ! महाभारत में नियोग-
प्रथा…"

"अरे, बाबा ! तुमने 'महाभारत-रामायण' और शास्त्र-पुराण क्या इसी तरह के उदाहरण देने के लिए पढ़े हैं ? अच्छे प्रसंगों में तुम्हें सिर्फ अपने बाबूजी की ही याद आती है ।…"

"शास्त्रों में, मीता, पिता को ही पुराण-पुरुष कहा गया है । अच्छा, छोड़ो ये सब बातें । मेरा बिस्तर ले जाकर बरामदे में लगा दो और अपना रात वाला वादा पूरा करो ।"

मीता ने एक झटके के साथ अपने को छुड़ा लिया और यह कहती हुई बाहर निकल गई, "भाड़ में जाओ तुम ।"

उसका मन हो रहा था, जोर से हंसे । एक लम्बे अन्तराल के बाद कितने दुर्लभ क्षण हैं ये !

मीता ने रसोईघर में बैठे-बैठे ही पुकार लिया, "सुनील के बाबू ! यहं चले आओ । मैं चाय चढ़ा चुकी हूं ।"

वह आलस्य तोड़ता हुआ-सा उठा । चारपाई पर सोए सुनील को धीमे से प्यार किया और 'ओम् नमो भगवते वासुदेवाय' कहता हुआ मीता की ओर बढ़ गया ।

६

इतवार की दोपहर-भर में मीता ने घर को इस तरह संवार दिया कि बाहर से आने वाले को इस बात का आभास नहीं हो सकता था कि इस घर में गृहिणी को आए सिर्फ दो ही दिन हुए होंगे। शाम के वक्त दोनों पहले सिविल लाइंस की ओर घूमने निकल गए और फिर प्लाजा में लगी पुरानी फिल्म 'कागज के फूल' देखकर लगभग दस बजे घर वापस पहुंचे।

सुनील रास्ते में ही सो गया था। उसे चारपाई पर सुलाकर मीता ने टोव जलाकर सब्जी गरम की, परांठे भी दिन में ही सेंक लिए थे। रसोई; र में ही दोनों खाना खाने बैठे, तो मीता बोली, "देखो, कल तुम कहीं से रपाई एक और खरीद लाओ। जरा बड़ी खरीद लाना। तुमने तो बस, ह्मचारियों का सा डेरा बनाया हुआ है। सुनील के साथ सोती हूं, तो पलटने ो जगह नहीं मिलती।"

"मैं समझ गया। अब वाली चारपाई मुझे ऐसी लानी है, जिसमें तुम और हम सोएं, तब भी पलटने की जगह निकल आए।"

"तुम तो अकाल के मारे हुए जानवरों जैसे हो गए हो, जो अपनी भूख में मिट्टी चाटने लगते हैं। फिल्म तक तुमने ठीक से देखने नहीं दी। मैं सुनील के और तुम्हारे लिए थोड़ा-सा ऊन ले आना चाहती थी, सिविल लाइन में दुकानें बंद थीं। कल किसी वक्त…"

"सुनील की तो कई बनियानें, तुमने आज धूप में सूखने डाली हुई थीं? तुम तो अभी कुछ दिन मुझको ही बेटा मानकर चलो और सिर्फ मेरी ही

चिंता करो। यह उल्लू का पट्टा तो डेढ़ साल तक दूध पी-पीकर मुटा गया है।…"

"छि-छि! तुमने तो बेकार ही ब्राह्मणों के घर जन्म लिया। म्लेच्छ लोग भी तुम जैसी गंदी बातें शायद ही करते हों। बच्चों के लिए तो मां को हर सर्दी में बनियान बिननी ही होती है। मां बताती है कि छोटे बच्चों के लिए कुछ न कुछ बनाते रहना चाहिए, तभी वो तेजी से बढ़ते हैं।"

"अभी उसको तेजी से मत बढ़ाओ। थोड़े दिन मेरा पालन-पोषण भी ठीक से होने दो। मीता, मजाक-भरी बातें मैं करता तो हूं, लेकिन सच पूछो तो मैं अघा नहीं पा रहा हूं। थोड़े-से वक्त के लिए मिले हुए स्वर्ग की जैसी उतावली मुझमें भरी हुई है। मां मरी, तब तो मैं बहुत छोटा था। इस वक्त तुम्हारे साथ बैठे हुए, देखो, मुझे एकाएक मां की याद हो आई है।"

"दिन में जब थोड़ी देर के लिए तुम सो गए थे, बगल की पड़ोसिनें आई थीं—मिसेज वर्मा। उनके पति वहीं ए० जी० आफिस में काम करते हैं। हम लोगों के जो मकान-मालिक हैं, उनके बारे में वही अजीब ही बातें बता रही थीं। इस मकान में हमारे अलावा सिर्फ मिसेज वर्मा लोग ही किरायेदार हैं। उनका दरवाजा दूसरी तरफ पड़ता है। मकान-मालिक का दरवाजा जैन होस्टल वाली सड़क पर खुलता है, दूसरा भारद्वाज आश्रम वाली गली में। उधर से जो गली…"

"मीता, अब पेट भर गया है और नींद आ रही है। तुमने तो बिल्कुल तहकीकात पर आए हुए पुलिस वालों की तरह मकान के बारे में 'रिपोर्ट' देनी शुरू कर दी है। अरे, भाई, हमारे मुखर्जी साहब का कोई प्रेम-प्र म का किस्सा सुनाना हो, तो तड़ाक से सुनाओ और छुट्टी करो। स्त्रियों में यह, साहब, बड़ी अद्भुत कला होती है कि परिचय हुआ नहीं कि जन्म-जन्मान्तरों के जानने वालों की तरह बतियाना शुरू कर देंगी और उस बताने में 'हमारे उनको तो करेले की सब्जी बहुत पसंद है या नापसंद है'—से लेकर, मोहल्ले में से कब कौन लड़की या घरवाली को ले उड़ा था, तक की बेशुमार बातें होंगी। मैंने मोपासां की एक कहानी पढ़ी थी, उसमें बताया गया था कि दूसरों के किस्से बयानकर ही अक्सर औरतें अपनी दबी हुई इच्छाओं का सबूत दिया करती हैं।"

था आपके यहां…"

निगम साहब सिर्फ नमस्कार स्वीकार कर लेने की-सी मुद्रा में अपने भारी-भरकम सिर को थोड़ा-सा हिलाकर, दूसरी तरफ निकल गए, तो वह तय नहीं कर पाया कि बालदिवस की तैयारियों में उसकी अनुपस्थिति के प्रति उनका रुख नाराजगी का है, या नहीं। इतना वह जानता था कि नवम्बर का महीना शुरू होते ही निगम साहब के सारे अस्तित्व में बालदिवस मंडराने लगता है। दो महीने पहले ही राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, स्वराष्ट्रमंत्री, वित्तमंत्री से लेकर मुख्यमंत्री तथा अन्य प्रादेशिक मंत्रियों तक को भव्य ढंग से पत्र चले जाते हैं। जहां कहीं से भी शुभकामना संदेश आ जाते हैं, उन्हें 'विनोदिनी देवी कन्या पाठशाला' के 'सॉवेनियर' में छापने के साथ-साथ, उनकी फोटो को खिचवाकर, कुछ को मढ़वा लेते हैं, बाकी अलबम में रख लेते हैं और विशेष रूप से अपने मुवक्किलों को दिखाते हैं। 'सॉवेनियर' में छपने वाले अधिकांश शुभकामना-विज्ञापन भी मुवक्किल के ही होते हैं.।

पिछले वर्ष के बालदिवस की तैयारियों में जनार्दन ने भी काफी परिश्रम किया था—'सॉवनियर' के प्रकाशन में भी। निगम साहब प्रसन्न हुए थे और सीधे पचास रुपये बढ़ा दिए थे। नाराज होंगे तो घटा भी सकते हैं। जनार्दन जानता है कि अपने इस छोटे स्कूल को लेकर निगम साहब अपने व्यक्तित्व में विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों की कोटि की गरिमा अनुभव करते हैं।

उसने चारों ओर देखा। अच्छी-खासी सजावट और चहल-पहल के अलावा पुलिस वालों की मौजूदगी समारोह को भव्यता प्रदान कर रही थी। स्थानीय राजनीति के छुटभैये भी इधर-उधर मंडरा रहे थे।

वह अपनी चिंता में ही था कि जिलाधिकारी की पत्नी की मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थिति सारे वातावरण में छा गई। खास तौर पर सारे वकील एकसाथ ऐसे उठ खड़े हुए थे, जैसे कक्षा में अपनी गुस्सैल अध्यापिका को देखते ही छोटे बच्चे उठ खड़े होते हैं।

मुख्य अतिथि ने अपने संक्षिप्त भाषण में जहां दो-दो बच्चों के स्कूलों को सुचारू रूप से चलाकर, निगम साहब के द्वारा पंडित जवाहरलाल नेहरू

और प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के महान आदर्शों को पूरा किए जाने
बात कही, वहीं महिलाओं की प्रगति का भी जिक्र किया।

''जैसाकि आप सभी लोग जानते हैं, हमारे देश में इलिट्रिट औरतों क
नम्बर बहुत बड़ा है। जिस कंट्री की औरतें बेपढ़ यानी 'अन-एज्यूकेटिड'
होते हैं—वो हमेशा बैकवर्ड रहता है। ऐसी कंट्री में सोशल इकानामिकल
प्रोग्रेस नहीं होते हैं। गर्ल्स को उनकी 'चाइल्डहुड' से ही एज्यूकेशन में डालने
से बड़ी हो करके वो एज्यूकेटेड औरत बनकर अपने कौम और कंट्री की तरक्की
कर सकती हैं। इस नेक काम में हमारे वकील साहब ने काफी काम किया
है। अक्सर लोग औरतों के मर जाने पर उनके नाम पर धर्मशाले, स्कूल से
लेकर गौशाला तक बनाते हैं। हमारी कंट्री में जब तक औरत जिंदा रहती
है, उसे दबाने की कोशिश की जाती है। हमारे वकील साहब ने अपनी जिंदा
धर्मपत्नी के नाम पर स्कूल बनाकर एक महान् आदर्श पेश किए हैं। हम
इस बात की तारीफ करती हूं।''

तालियों की गड़गड़ाहट के बीच ही लोगों की फुसफुसाहट भी फैल रही
थी कि 'कलक्टर साहब को तो ये ऐसे ही दावे रखती हैं, जैसे चूहे को
बिल्ली।' याकि 'जैसे महिला-उद्धार निगम साहब करते हैं, ऐसा ही सब
करने लगें, तो सचमुच महिलाएं मुक्त हो जाएं।'

अब कहीं जनार्दन का ध्यान इस ओर गया कि विनोदिनी कन्या पाठ-
शाला की सभी अध्यापिकाएं विशेष रूप से संवरी हुई स्वयंसेविकाओं की-
सी भूमिकाओं में विचरण कर रही हैं।

मिसेज उर्मिला भटनागर ने अपना भाषण समाप्त करके, अपने बेटे
ज भटनागर के हाथों से नेहरूजी के चित्र को पुष्पहार पहनवाया, तो
फिर तालियों का शोर गूंज उठा। उसी शोर के बीच प्रफुल्लता और कृत-
कृत्यता में विदेह हो गए-से निगम साहब मंच पर पहुंच गए और 'धन्यवाद' की
मुद्रा में होकर, उन्होंने भी अपना संक्षिप्त-सा भाषण दे डाला। अपने संक्षिप्त
भाषण में उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि 'हमारे बच्चों की कानूनी
शिक्षा तगड़ी होनी चाहिए।'

फिर क्रम से राजनैतिक छुटभैयों के भाषण हुए, जिसमें उन्होंने इतनी
बड़ी-बड़ी बातें कहीं कि वहां उपस्थित सारे छोटे बच्चे गलत जगह आ

गए लगे। उनके चेहरों पर, अब और उदासीनता छा गई थी। लगातार घण्टों तक अपनी समझ में परे के लोगों को सहने में वे निरीह हो आए थे। अंत में, श्रीमती विनोदिनी निगम मंच पर आईं और सबसे पहले उन्होंने जिलाधीश की पत्नी श्रीमती भटनागर को धन्यवाद दिया कि 'मुझे श्रीमती भटनागर में स्वर्गीया कमला नेहरूजी का जैसा तेज दिखाई पड़ता है।'

कुछ उनके स्वरूप और कुछ उनकी बातों के कारण लोगों में हंसी फैलने लगी तो उन्होंने निगम साहब के संकेत पर जल्दी-जल्दी जैहिंद की शरण ले ली।

श्रीमती निगम के भाषण के बाद, जब बच्चों के सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रारम्भ हो गए, तो उसने देखा कि निगम साहब संकेत से उसे पास बुला रहे हैं।

पास पहुंचा, तो निगम साहब की प्रफुल्लता देख राहत मिली। वह जनार्दन का कंधा थपथपाते हुए बोले, "भई, भट्ट! मैं जरा श्रीमती भटनागर को विदा करने जाता हूं। देख लेना, बच्चों के सांस्कृतिक कार्यक्रम ठीक से और जल्दी-जल्दी निबट जाएं और मिठाई ठीक से बंट जाए। क्या कहें, हमें भी ध्यान नहीं रहा, नहीं तो तुम्हें घर बालदिवस के बाद जाने को कह देते। तुम्हारे न होने से इस बार 'सॉवेनियर' वक्त पर नहीं निकल पाया। अब तुम्हें ही निकालना होगा।"

अपना कहना समाप्त करते हुए भी उन्होंने उसके कंधे को बड़ी आत्मीयता से थपथपाया, "अब कल किसी वक्त घर पर आओ, वाइफ को साथ लेते आना। श्रीमतीजी से भेंट करा देना। कल बच्चों की छुट्टी ही रहेगी।"

स्कूल से लौटते वक्त, वह पहले हाशिमपुर रोड पर अपने एक परिचित मित्र के यहां गया। वहां से कुछ देर बाद भारद्वाज आश्रम की ओर से वापस घर की ओर लौटा, तो पी० ए० सी० पार्क के मुहाने पर की लाल बंगलिया के पास ही अचानक सवित्तरी दिख गई। उस वक्त वह किसी प्रौढ़ किस्म की औरत के साथ थी। वह औरत नाले के किनारे ही लघुशंका निवटने बैठी हुई थी, और उसने गौर किया कि सवित्तरी का चेहरा शर्म से भर गया है।

वह कुछ फासले पर ही थी। जनार्दन संकोच से कन्नी काटकर f

जाना ही चाहता था कि तब तक में वह औरत उठ खड़ी हुई। सवित्तरी की आवाज उसे सुनाई दे गई, "मौसी, तुम चलो, हम आइत हैं।"

वह समझ नहीं पाया कि अपनी ही जगह पर आखिर वह क्यों रुका रह गया है ? हालांकि सिर्फ कुछ ही क्षण बीते होंगे, लेकिन उसे लगा, वह काफी देर से वहीं खड़ा था।

सवित्तरी ने उसकी ओर देखा और संकोच-भरी मुस्कराहट के साथ "नमस्ते, साहेब !" कहा तो वह अपने-आपको थोड़ा-सा विचलित अनुभव करने लगा। सवित्तरी के 'नमस्ते, साहेब !' के उत्तर में उसे क्या कहना चाहिए, कुछ सूझा नहीं। एकाएक उसे ध्यान आया कि मौसी नाम की औरत को, शायद, सवित्तरी ने इसीलिए विदा कर दिया होगा कि नमस्ते कर सके।

किसी तरह बोला, "कहो, सवित्तरी, कैसी हो ? शिवचरन कहां है ?"

थोड़ी-सी बातचीत के बाद ही वह घर वापस लौट आया, लेकिन उसे कुछ समझ में नहीं आया कि सवित्तरी को देखकर इतने संकोच में पड़ जाने की उसे क्या आवश्यकता थी।

मीता घर के कामों में व्यस्त थी। वह धीमे से कपड़े पहने-पहने ही चारपाई पर लेट गया और उसे लगा कि वह सवित्तरी के उन क्षणों के रूपाकारों की कल्पना कर लेना चाहता है।

७

शाम को जनार्दन बलोपीबाग वाली 'ट्यूशन' पर से वापस लौटा, तो सुनील बरामदे में अपनी लकड़ी की घोड़ागाड़ी से खेलता मिला। उसके चेहरे से साफ झलक रहा था कि इस बीच वह बहुत रोया होगा।

घर में एक प्रकार के सन्नाटे की-सी स्थिति थी, जबकि ऐसा कभी होता नहीं है। यह मीता के पूजागृह में होने का वक्त है। अक्सर वह घर तक हाथ थामकर पहुंचाती हुई-सी इस छोटी गली में प्रवेश करता होता है कि शंखध्वनि उसे अपने अस्तित्व को स्पर्श करती अनुभव होती है। सुनील भी, अपनी मां के साथ, पूजागृह में होता है।

वह कल्पना पर जोर देता, साइकिल यों ही खड़ी कर, सुनील को प्यार करते आगे बढ़ा ही था कि शायद, मीता कहीं बगल पड़ोस में गई हो— मीता के कराहने की आवाज उसे साफ सुनाई दे गई।

वह तेजी से कमरे की तरफ बढ़ा, तो ध्यान आया कि घर के पास पहुंचते ही जिस बात से वह सबसे ज्यादा चौंका था, वह घर में रोशनी का न दिखाई देना था। उसने बटन दबाया, तो कमरे में रोशनी होते ही उसे दिख गया कि मीता चारपाई पर पड़ी है और मुंह ढाप है। उसने ओढ़े हुए गद्दे, कम्बल और लिहाफ को मुंह पर से हटाया, तो पाया कि मीता का चेहरा ज्वर से तपा है। माथे पर हाथ रखा तो हल्का-सा चिपचिपापन और दाह महसूस हुआ।

मीता ने कराहते हुए ही आंखें खोलीं, और बस, यों ही देखती रही।

उसका चेहरा बहुत तनाव-भरा था और वह बोल नहीं पा रही थी।

वह कुछ पूछना चाहता था कि 'मीता, ये अचानक तुम्हें क्या हो ग
कि एक तो तभी याद आ गया कि खांसी और हरारत तो कई दिनों
उसे। और दूसरे, बरामदे में इस बीच फिर से रोना शुरू कर चुके सु
को गोद में लिए, सवित्तरी कमरे में आ गई थी, "क्या बात है, स
बहूजी इस वक्त खटिया पर कैसे पड़ी हैं ?"

"इन्हें, शायद, बहुत तेज बुखार है।"

"कहीं नमूना बुखार ना हो···कोई दवा नहीं रखी घर में ?"

"अनासिन, शायद, मंगाई थी इन्होंने परसों। सवित्तरी, तुम आ गई
तो ऐसा करो, थोड़ी-सी चाय बना दो। फिलहाल चाय के साथ अनासिन
दें इनको।"

अनासिन ढूंढ़ने वह रसोईघर में गया कि यहीं कहीं रखी होगी मीत
ने। रसोईघर के संकरेपन में पानी लेने को बाहर आती सवित्तरी
आमना-सामना हो गया। भीनी-सी महक अनुभव करते ही उसने देखा कि
सवित्तरी ने अपने जूड़े में चमेली के फूलों का गजरा सजा रखा है।

सवित्तरी के चाय बनाकर ले आने तक, वह मीता के माथे पर का
पसीना पोंछता और सांत्वना देता रहा। हलका-सा पसीना हो आने और
उसकी उपस्थिति का सहारा पाकर, मीता ने टूटती हुई-सी आवाज में
बताया कि अभी लगभग सिर्फ घण्टा-भर पहले वह 'बाथरूम' तक गई, तो
अचानक कैसे बदन में पहले हरारत, फिर भयंकर जकड़न और कंपकंपी-सी
महसूस हुई और चक्कर खाकर 'बाथरूम' में ही गिरते-गिरते बची। किसी
तरह अपने को साधकर खटिया तक पहुंची और असह्य कंपकंपी में खटिया
पर रखा सारा बिछौना ओढ़ती चली गई। सुनील ने रोना शुरू किया, रोता
रहा और गला बैठने को आ गया, तब बाहर निकल गया कमरे में से।
रोना उसे सुनाई देता रहा, मगर अपनी कंपकंपी और यातना के भंवर में
पड़ी लकड़ी की तरह डूबी रह गई।

"हमारे पहाड़ों में इतनी ठंड पड़ती है, बर्फ गिरती है, मगर निमो-
निया की बीमारी जितनी 'प्लेस' में होती है, हमारे यहां नहीं। सवित्तरी,

तुम्हें कहीं किसी घर पर काम पर जाना है, या कुछ देर यहीं रुक जाओगी? मैं जरा डॉक्टर बुला लाता। बहूजी को बुखार ज्यादा ही मालूम पड़ता है। लक्षण निमोनिया के ही दिखते हैं…"

सवित्तरी ने रुके रहने का संकेत सिर हिलाकर दिया और मीता के सिरहाने की ओर, फर्श पर बैठ गई।

"चाय तुम भी पी लेना, सवित्तरी, और जरा सुनील का ध्यान रखना— मैं जल्दी ही लौटूंगा।" कहता वह बाहर निकला, तो पाया कि साइकिल गायब है। साफ था कि कोई ले गया। अपनी खिन्नता को दबाए, वह मुख्य सड़क तक पैदल चला आया और फिर रिक्शा करके डॉक्टर के यहां तक चला आया।

डॉक्टर का स्वभाव उसे पिछली बार भी कुछ चिड़चिड़ा किस्म का लगा था। मरीज की बातों को धैर्यपूर्वक सुनने की जगह, वे आनन-फानन में हाल-चाल पूछने और जब तक रोगी अपना पूरा हाल बता भी न पाए, दवा लिखना शुरू। उसे याद आया, पिछली बार डॉक्टर साहब एक महिला से उसके बच्चे के दस्त लगने के बारे में पूछ रहे थे और वह महिला यही कहती कि बहुत बार।

डॉक्टर का 'बहुत कितना, बहनजी, दस बार? बीस बार? सौ बार? हजार बार? लाख बार?' कहना उसे एकाएक याद आया और उसे लगा कि आज कहीं उसने भी 'बहुत तेज बुखार है' कहा, तो डॉक्टर भन्ना न पड़ें कि—'आखिर कितना बहुत? सौ डिग्री? हजार डिग्री/लाख डिग्री?'

"हां, साहब, आएं।" डॉक्टर रमेश चंद्रा ने उसीकी तरफ संकेत किया, तो वह कुछ हतप्रभ हो गया।

"हाल बताएं।" डॉक्टर चंद्रा ने अपने मशीनी लहजे में पूछा, तो वह सहसा तय नहीं कर पाया कि बताना कैसे शुरू करे।

"हाल बताएं…"

"जी, मेरी वाइफ हैं…उन्हें पिछले कुछ…यानी तीन-चार दिनों से कुछ 'इंफ्लू-एंजा' की सी शिकायत थी—हरारत, टूटन और कुछ—यही कोई दिन में तीन-चार बार खांसी। रात को कुछ ज्यादा।"

"रात को कितनी बार?"

"जी, यही कोई..."

"यानी तीन-चार वार ? हाल वताएं..."

"जी, दिन में कोई ऐसी वात नहीं थी, मगर आज शाम जैसे ही घर पर वापस लौटा, तो देखा—श्रीमतीजी कम्वल, गद्दा, लिहाफ, सव एक-साथ ओढ़े चारपाई पर पड़ी हैं और तेज बुखार से उनका हाल बुरा है..."

"हाल वताएं..."

"जी, ऐसा है, कि वो वोलने में तकलीफ महसूस कर रही थीं और आंखों में तेज जलन, चेहरा तपा हुआ, माथे पर चिपचिपा पसीना..."

"हाल वताएं..."

"जी, वुखार..." कहते हुए वह फिर रुक गया और उसे लगा कि हर वार एकाध वाक्य के वाद उसका गला वंध-सा जाता है।

डॉक्टर चंद्रा जैसे संगीत की लय में हों, 'हाल वताएं' कहे जा रहे थे। उसने अनुभव किया कि अव उनका अगला सवाल यही होगा कि वुखार कितना था ? वहुत कितना ? सौ डिग्री ? हजार डिग्री ? लाख डिग्री ?

उसको लगा, किसी दूसरे डॉक्टर के पास जाना चाहिए था।

इसी वीच उसने पाया कि डॉक्टर ने दवाएं लिख भी दी हैं। पुर्जा पक-ते हुए, वो फिर उसी 'हाल वताएं' वाली लय में कहते गए, "कैप्सूल न में तीन वार, मिक्सचर चार वार। पुड़िया चार वार। थर्मामीटर रीद लें। वुखार घण्टे-दो घण्टे में नापते रहें। खाने में डवलरोटी का । मौसमी का रस। चाय। वुखार ज्यादा तेज होने पर ठंडे पानी की । एक सौ तीन से वढ़े, वर्फ की पट्टी। दुवारा आएं। हाल वतावें।"

डॉक्टर रमेश चन्द्रा का वड़ा-सा, अशोक वृक्षों से घिरा लॉन पार कर ने पर अव उसे पहली वार अनुभव हुआ कि साइकिल चोरी चली जाने विषाद इस वीच भी उसके भीतर इकट्ठा होता रहा है और सड़क पर ही चेहरे की त्वचा तक छलक आया है। साइकिल के विना तीन-तीन नों पर जाना कैसे सधेगा ?

सामने से एक रिक्शा खाली आता दिखाई पड़ा, तो उसे लगा, इसे रन होना चाहिए, मगर वह कोई दूसरा ही था और मूंडी हिलाता निकल गया।

आखिर वह तेज-तेज चलता, पैदल ही घर पहुंचा दवाएं लेकर, तो पाया कि सवित्तरी मीता के माथे पर पट्टी रखे है और पास में ही पानी का भगौना रखे, सिरहाने के पास फर्श पर बैठी, अखबार पढ़ रही है।

"सवित्तरी, तुम तो पढ़ी-लिखी मालूम पड़ती हो?" पूछने के आवेग को उसने जैसे जीभ की नोक पर रोक लिया।

मीता को दवा खिला चुकने के बाद, वह बोला, "भई, यह डॉक्टर रमेश चंद्रा बहुत भक्की आदमी है। किसीकी ठीक से सुनेंगे नहीं। बस, जैसे गाड़ी छूट रही हो, 'हाल बताएं, हाल बताएं' की रट लगाए रहेंगे और जब तक मैं हाल बताने की शुरुआत करूं, दवा लिखकर, पुर्जा थमा देंगे—'डबल रोटी का गूदा खिलाएं। दुबारा आएं। हाल बताएं।' इनकी बातें सुनते हुए 'दाढ़ी बनाने से पहले और दाढ़ी बनाने के बाद' वाला विज्ञापन याद आने लगता है। बिलकुल वैसा ही 'टोन' है बोलने का। डॉक्टर को ऐसा रूखा न होना चाहिए।...इस दवा के खत्म हो जाने पर, दूसरा डॉक्टर देखेंगे।...और, मीता, लगता है, कुछ गर्दिश का वक्त आ रहा है। इधर तुम बीमार हो गई हो, उधर साइकिल चोरी चली गई है।"

"अभी कुछ देर पहले हम और गनेशी सक्सेना साहब के यहां काम पर जा रही थीं, तो आप घर की तरफ साइकिल पर आ रहे थे ना...?"

उसने लक्ष्य किया, बोलते वक्त सवित्तरी की त्वचा निहायत पारदर्शी हो आती है। सवा-एक महीने की इस छोटी-सी अवधि में ही उसका बोलना बहुत दिनों के परिचितों का सा हो आया है।

"हां, सवित्तरी, साइकिल यहीं घर से चोरी गई है। घर में अंधेरा और सन्नाटा देखकर मैं कमरे में बहूजी के पास चला आया था, हड़बड़ी में ताला लगाना भूल ही गया।"

"हम आए, तब रही नहीं। यानी कि आपके साइकिल छोड़ने और हमारे आने के बीच में ही कोई उड़ा ले गया हरामजादा!"

उसके कहने में खुद की हुई हानि जैसा विषाद झलक रहा था।

"तुम तो, भई, सी० आई० डी० वालों की सी तफतीश कर लेती हो।" कहते हुए वह हौले से मुस्कराया तो सामने ज्वर में तपती पड़ी मीता की उपस्थिति में उसे अपनी यह मुस्कराहट अप्रासंगिक-सी महसूस हुई, लेकिन

फिर भी उसे याद आया कि अभी कुछ ही दिन पहले सुनील को सवित्तरी की गोद से लेते वक्त वह एक अबूझ किस्म के रोमांच से भर गया था।

है भी कैसी यह सवित्तरी ? मीता क्या कहती थी उस दिन कि कुत्ता-घर की कपास ? उसे कहना होता, तो वह क्या कहता कि जंगल का फूल ? याकि···याकि···

मीता ने करवट बदली, तो उसे लगा कि वह सवित्तरी की तरफ एकटक ताकते देख लिया गया है। उसने झटपट मीता का हाथ अपने हाथों में ले लिया और पूछ लिया, "अब कुछ 'रिलीफ' महसूस होती है, मीता ?"

उसे जाने क्यों यह महसूस हुआ कि 'पहले से ठीक हूं' कहते हुए मीता, शायद, धीमे से मुस्कराई है। वह अचानक कुछ याद करके अलमारी की तरफ चला गया। थर्मामीटर लाकर ज्वर देखा—अभी एक सौ चार डिग्री से ऊपर ही था।

"कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करें। डॉक्टर ने बताया था कि ज्यादा बुखार होने पर बर्फ की पट्टी रखें माथे पर, मगर निमोनिया में बर्फ···"

"जैसा डॉक्टर साहेब कहे हैं, वैसा करें।" कहा सवित्तरी ने, तो उसे भी लगा कि बात सवित्तरी से ही कही गई थी, शायद।

"कुछ रूखा जरूर बोलते हैं, डॉक्टर साहेब—मगर बड़े दयालु और निरलोभी हैं रमेश डॉक्टर। बाकी के बड़े डॉक्टर मरीजों को मूसने में तेज हैं साहेब, ये गरीबों के डॉक्टर कहे जाते हैं···वैसा ही बिना लाग-लपेट का बोलना है उनका···।"

"लगता है, सवित्तरी, तुम भी उनकी मरीज रह चुकी हो ?"

"हम तो नहीं, साहेब, मगर बप्पा और गंगवा रह चुके हैं।···अरे हां, आपकी साइकिल कौन कम्पनी की रही ?"

"कम्पनी से तुम्हें क्या वास्ता, सवित्तरी ?"

"ऐसे ही पूछती हूं।"

"हीरो थी।" कहता वह चौराहे की तरफ बर्फ लेने निकल गया।

रास्ते चलते भी उसे यही अनुभव होता रहा कि वह सवित्तरी की बातों में एक नितांत अपरिचित किस्म की सुगंध-सी महसूस करता है। इधर

लगभग डेढ़ महीने से विश्वविद्यालय की तरफ नहीं गया है। मीता को लेने जाने से पहले, कनिका बैनर्जी के साथ का जनरल लाइब्रेरी या सीनेट हॉल के सामने के मौलश्री के वृक्षों की छाया में होना। वहां भी तो अंकुरों की तरह उगते कोमल संबंधों के बीच लगातार इस बात का अहसास था कि मीता है।···हालांकि अब, इन बदली हुई परिस्थितियों में, वह सोच सकता है कि कनिका को लेकर उस तरह की व्याकुलता और छटपटाहट अनुभव होने के पीछे मीता और उसके बीच की गहरी खाई भी जरूर थी।

यहां ऐसा कुछ नहीं है, जो समस्या के आस-पास की चीज लग सके, मगर यह सवित्तरी नाम की लड़की अब अनुपस्थिति के क्षणों में भी याद रह जाती है। जाने क्यों, एक मद्धिम-सी ऊष्मा अपने भीतर अनुभव होती है, इसे देखते—अथवा स्मरण रखते—हुए। कहने को तो एक झटके में यह भी कहा जा सकता है कि सवित्तरी जैसी भरने-भरने को आ चुके जल जैसे तारुण्य में आंखों को बांधती-सी इस लड़की के प्रति आकर्षण अनुभव करना स्वाभाविक ही है और वह अनुभव कर रहा है। लेकिन नहीं, लड़की होने में से अगला ही कोई कदम स्त्री होने की भूमिका में रखने को प्रत्येक क्षण तत्पर दिखती हुई-सी सवित्तरी को देखते—या स्मरण रखते—हुए सिर्फ इतना ही महसूस नहीं होता है।

जाने क्यों उसे लगने लगा है कि इसे जरूर कहीं न कहीं, कभी न कभी पहले भी देखा है? कभी यों ही राह चलते, इसके अपने घर आने से पहले? सपने में? किसी पूर्वजन्म में?···तय है कि सपने में नहीं देखा है। इस सोहबतियाबाग में मकान लिए सिर्फ हफ्ता-भर हुआ था, जबकि वह मीता को लेने गया। नहीं, इससे पूर्व, कहीं नहीं देखा, अन्यथा दिखने पर याद रह जाने-भर को सवित्तरी है।···लेकिन जाने क्यों रात सोने में बहते जल जैसी यह सवित्तरी उसके भीतर इकट्ठा होती जाती है।

मीता को अगर जरा भी आभास मिला कि वह इस सवित्तरी से लगाव महसूस करने लगा है, तो कितना गिर जाएगा वह उसकी नजर में? सवित्तरी को तो मीता शायद, तुरन्त काम पर से अलग कर दे?

नहीं, इस तरह की अप्रिय स्थिति आने से अच्छा यह है कि वह इस सारे प्रकरण को पूरी तरह स्थगित कर दे और डूबने-डूबने को हो आने से

पहले ही वाहर को निकल आए। वजट में कभी, या किसी और वहाने सवित्तरी को काम पर से अलग कर देने की सलाह खुद ही मीता को दे दे। यह जो पिछले सवा-एक महीने में एक अबूझ-सा कोहरा उसकी चेतना के ईद-गिर्द एकत्र होता जा रहा है, धीरे-धीरे खुद-बखुद छंट जाएगा, वल्कि बिल्कुल उतने ही स्वाभाविक तौर पर, जैसेकि यह महसूस होना शुरू हुआ था।

वर्फ लेकर, मीता के पास लौटते तक में वह काफी संतुलित हो चुका था। नहीं, मीता को यह प्रतीति देना कतई ठीक नहीं कि जब वह निमोनिया के तेज ज्वर में तप रही होती थी, तब वह रात के सन्नाटे में सितार पर बजते किसी कोमल राग की सी अनुभूतियों में खोया रहता था।

स्वस्थ होने पर मीता जरूर सवित्तरी को लेकर बातचीत करेगी, यह विभ्रम मन में जाने क्यों लगातार बनता ही जा रहा है।

सवित्तरी ही वर्फ की पट्टी भी रखने लगी, तो उसने रोकने की कोशिश की, "तुम जाओ अब, सवित्तरी, बहुत परेशान हुई हो। तुम्हें अपने काम पर जाना होगा।"

"काम पर तो हम जाती रहती हैं, साहेव! सिर्फ दो घर छूटे हैं। अभी [illegible]व आप वाजार गए थे, गनेशी आई थी। हमने उसे सौंप दिया। यहां वहूजी [illegible]ी तवियत वहुत खराव है। हम खाना बनाती जाएंगी।"

"तव तुम वर्फ की पट्टी साहव को ही रखने दो, सवित्तरी। जल्दी से साहव [illegible] लिए दो फुलके सेंककर चली जाओ। वहुत रात हो जाएगी। खाना तु[illegible] अपने लिए भी वना लेना। डोलची में लौकी पड़ी होगी, सब्जी वना लेना [illegible] गनेशी दूध ले आई है ना? पहले दूध गर्म करके, पप्पू को पिला दो। व[illegible] काम आई हो तुम। इस बीमारी में, यहां परदेश में कौन देख[illegible] हमें।"

काफी अंतराल देकर, धीमे-धीमे वोलने के वावजूद मीता के [illegible] पर थकावट उभर आई। सुनील रोते-रोते थका, रुआंसा चेहरा लिए उ[illegible] वगल में आ गया था। मीता से उसका उदास चेहरा देखा न गया। [illegible] से अपने पास बुला लिया। लेकिन अभी दूध पिलाने को हुई ही थी कि [illegible] लेकर आती सवित्तरी ने टोक दिया, "ना-ना, यह क्या कर रही हैं, वहू[illegible]

नमूना बुखार में बच्चे को दूध पिलाना ठीक नहीं। मैं अभी भैंस का दूध पिलाती हूं। हाय, माई का मन! मरते भी बच्चे को छाती से लगाएगी।"... कहते-कहते उसकी नजर जनार्दन पर पड़ी, तो वह जल्दी से चाय का प्याला पकड़ाती, सामने रसोईघर में चली गई लेकिन उसका संकोच से भर उठना जैसे उसकी पीठ तक उभर आया।

जनार्दन कुछ कहने को हुआ मगर लगा कि बात हवा के झोंके की तरह सिर्फ उसके ही मन में हलका-सा कम्पन पैदा करके, थम गई है।

८

सुवह सवित्तरी आई, तव जनार्दन वरामदे के कोने में चौकी पर पालथी
रे वैठा था। मीता द्वारा वनाए गए, छोटे-से मन्दिर का-सा आभास देते उस
जा-गृह में वैठे दुर्गा सप्तशती का पाठ करते हुए, वह पुजारियों की-सी
द्रा में हुआ पड़ा था। ललाट पर के चंदन के तिलक और गले में झूलती
नेळ से उसका समूचा व्यक्तित्व कुछ वदल गया-सा प्रतीत हो रहा था।

सवित्तरी के होंठों पर धीमी-सी मुस्कराहट फैल गई और वह खुद
नहीं समझ सकी कि ऐसा सिर्फ कौतूहल में हुआ है या कि शरारत में भी।

वह सवित्तरी की उपस्थिति को पूरी तरह अनुभव कर चुका था, मगर
वेखवर—याकि उदासीन—दिखने की कोशिश करता, दुर्गा सप्तशती के पाठ
में डूवा था:

'त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वंहि वषटकारः स्वरात्मिका।
स्वधा त्वमक्षरे नित्ये…।'

सवित्तरी की ओर अनायास आंखें पड़ते ही जाने क्यों उसे एकाएक
याद आ गया कि अगली तीसरी पंक्ति में ही **'त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि
जननी परा'** पंक्ति है!

सवित्तरी की तरफ पीठ पड़ती है, मगर जैसे सांप के वारे में कहा जाता
है कि वह अपनी सम्पूर्ण त्वचा से सुनता है, सवित्तरी के आने को शायद उसने
भी कुछ ऐसे ही सुना था, क्योंकि वह जव चलती है तो वहुत निकट पहुंच जाए,
तभी चलने की आवाज सुनाई दे पाती है।

"सवित्तरी, तुम आज जल्दी ही आ गई।" पाठ-निवृत्त होते ही उसने पूछा।

"बहूजी की तबियत कैसी है, साहब ?"

"कुछ ज्याद ही खराब होती मालूम पड़ती है। रात को बुखार एक सौ पांच से भी ऊपर तक पहुंच गया था।"

"बप्पा रे···" कहती वह जनार्दन के कहने को अधर में ही छोड़कर, तुरन्त भीतर पहुंच गई। सिर्फ एक दिन, रात की अस्वस्थता में ही मीता का चेहरा पीला पड़ गया था। सवित्तरी ने उसके माथे और कपोलों को स्पर्श किया, तो उसे कोमलता की अनुभूति हुई।

सुनील छोटी वाली चारपाई पर सोया पड़ा था।

"दूध आ गया होगा, बहूजी !"

"हां। बाबूजी ले आए हैं। तुम इतनी सुबह-सुबह आ गई हो और तुम्हारी आंखों में मेरी चिन्ता झांक रही है।···मां भगवती ही तुम्हें प्रेरित कर रही होंगी और···तुम मेरे ठीक होने तक इस घर की देख-रेख कर ही दो, सवित्तरी ! बाबू साहब को स्कूल और ट्यूशनों पर जाना होता है। लोग नागा बरदाश्त नहीं करते। यों भी मरदों से घर के छोटे-छोटे काम कहां हो पाते हैं। ठीक हो जाने पर जो मुझसे बन पड़ेगा, दूंगी जरूर तुमको। ···बस, इतना देख लेना कि तुम्हारे काम का हर्जा न हो और तुम्हारे बाबू नाराज न हों कि लड़की एक घर पकड़कर बैठ गई।" सांस बहुत तेज चलने से वह हांफकर रह गई।

"इतनी सुबह हमें बप्पा ही भेजे हैं, नहीं तो कुछ देर से ही आती। बप्पा कहते हैं कि भले लोग हैं। विपदा में काम आने में पुन्न है।···आप निसखातिर रहें, बहूजी ! आपके ठीक होने तक हम सारा काम करेंगी। आपके जैसा तो नहीं हो पाएगा।"

"तुम मुझसे अच्छा ही कर लोगी, सवित्तरी !" कहते-कहते मीता के आंखों में आर्द्रता आ गई। उसका चेहरा थकान से पूरी तरह भर गया दिख रहा था। सवित्तरी ने अंगुलियों से धीमे से उसकी आखों को पोंछ दिया।

हालांकि खुद वह भी सोच रहा था, डॉक्टर के यहां ले जा सकने की स्थिति में मीता नहीं है और वहां जाकर आनन-फानन में हाल बताने

र दवा लिखवा लेना लापरवाही बरतना होगा, मगर सवित्तरी का यह
हना और जल्दी ठेल ले गया कि 'बहूजी की तबियत कुछ ज्यादा ही
खराब मालूम पड़ती है, साहेब !'

डॉक्टर रमेश चंद्रा आए और कुछ ही क्षणों में बुखार का चार्ट देखने
और 'स्टेथिस्कोप' छाती तथा पेट की तरफ घुमाकर, खिलाड़ियों की-सी फुर्ती
के साथ बाहर निकलने को हुए तो उसने डरते-डरते पूछा, "डॉक्टर साहब,
दवा बदलने की जरूरत पड़ेगी ?"

"क्या बात करते हैं, जनाब ? दवा क्या इस तरह ही दस-बारह घंटे में
बदली जाएगी ? दवा पुरानी चलने दो, चार दिन। कैप्सूल एक और नई बढ़ा
देते हैं। टेम्प्रेचर इसी तरह लेते रहें। तेज बुखार में बर्फ की पट्टी रखें। खाने
को वही डबलरोटी का गूदा। चाय, मुसम्मी या गुनगुनाते पानी में नीबू की
शिकंजी। शाम को डिस्पेन्सरी आवें, तो टेम्प्रेचर का चार्ट लेते आवें। मरीज
को साथ न लावें। सिर्फ हाल बतावें।" उसके फीस के दस रुपये देने तक
में तो डॉक्टर चन्द्रा सड़क पर पहुंच चुके, "शाम को लेते आवें। मरीज का
हाल भी बतावें।"

उसका मन हुआ कि सवित्तरी के सामने ही अपने माथे पर दोहत्थी मार
ले।

उसने देखा नहीं, मगर महसूस किया कि उसकी बदहवासी पर सवित्तरी
हलके से मुस्करा रही है। दवा का पुर्जा हाथ में थमा था, वह चप्पल पहन-
कर बाजार जाने लगा कि कैप्सूल लेते आए, तभी सवित्तरी ने टोक दिया,
"बाबू साहेब, इसी तरह चले जाएंगे..."

"क्यों, इसी तरह जाने में कोई बुराई है क्या ? क्या डॉक्टर हैं, साहब
इतना तक नहीं बता गए कि आखिर बीमारी क्या है। पूछ लेता, तो अप
वही बोरोलिन वाली आवाज में जवाब ठोक देते कि बीमारी क्या कोई द
बारा घण्टे में जानने-बताने की चीज है, जनाब !...हद है।"

"हम तो सिर्फ यों कहने लगी थी कि इस धोती-कुरते-तिलक-चन्दन
तो आप खुद ही वैद मालूम पड़ते हैं !"

यह पहला वाक्य था जो सवित्तरी ने उसे भरपूर विनोद में सम्बो
करते कहा था और उसे लगा, सवित्तरी का कहना जैसे किसी कोमल

की तरह स्पर्श कर गया है।

वह सवित्तरी की तरफ यों ही देखता बाजार की ओर निकल गया।

नई लिखी दवा उसे कटरा मिश्रा फार्मेसी तब जाने पर ही मिल पा और आते-जाते दोनों बार रिक्शा तय करने में इतना वक्त लग गया कि लग भग सवा घण्टे बाद ही वह घर वापस लौट पाया।

सिर्फ इस सवा घण्टे में ही सवित्तरी ने मीता को दातून करवाकर, मुंह धुला दिया था। सहारा देकर 'बाथरूम' तक ले गई थी और आग्रह कर-करके चाय दुबारा पिला चुकी थी। सुनील को दूध पिला दिया था और अंगीठी सुलगाकर दाल का पानी चढ़ा दिया था। मीता ने बता दिया कि दाल-भात उसका पकाया नहीं खाएगा जनार्दन।

"देखो सवित्तरी, जब तक बहूजी की तबीयत ठीक नहीं हो जाती, तुम मेरे अकेले के लिए खाना बनाने का झमेला मोल न लो। मेरा भी काम डबलरोटी से चल जाएगा।"

"आप पण्डित लोग जाने कैसे-कैसे लोगों के गुंदे मैदे की डबलरोटी खा लेंगे लेकिन हम लोगों का पकाया दाल-भात नहीं खाएंगे।" कहती सवित्त बाल्टी हाथ में लिए सार्वजनिक नल की ओर निकल गई, "घर के बम्बे में पानी नहीं आ रहा।"

सवित्तरी के रुख से स्पष्ट लगता है कि वह हस्तक्षेप बचाना चाहती है और ज्यों-ज्यों मीता की अस्वस्थता लम्बी खिंचती चली गई, घर की व्यवस्था संभालने में वह लगभग अधिकार का रुख अख्तियार करती चली गई है। हालांकि अत्यन्त विनय-भाव से ही वह सारा काम-काज निपटा रही थी, मगर पूरा घर जैसे उसकी उपस्थिति से भर गया था। मन मार-कर वह स्कूल भी जा रहा था और ट्यूशनों पर भी, ताकि आर्थिक जर्जरता मीता के उपचार के आड़े न आने लगे और लौटने पर सवित्तरी के हाथों की चाय न मिलना अब उसे एक रिक्तता और अभाव महसूस कराने लगा था।

प्रायः यही होता था कि वह ट्यूशन निपटाकर लौटता, तो चाय का पानी स्टोव पर चढ़ा देता। वह खुद महसूस कर रहा था कि निहायत

ारी की स्थिति में ही सही, मगर सवित्तरी का घर के वातावरण पर—
क कहना चाहिए कि उसकी मानसिकता पर—इस कदर हावी होते जाना
उसको चाहे जितना प्रीतिकर लगता हो, मगर पारिवारिक वातावरण
लिए स्वस्तिकर शायद, सिद्ध न हो पाएगा।

डॉक्टर रमेश चन्द्रा ने बता दिया था कि वे पहले ही दिन समझ गए
कि बहुत ही सीवियर किस्म का निमोनिया है और इसके शिकंजे से निक-
लते और बीमारी की टूटन से संभलते वक्त लग जाएगा।

पांचवें दिन वह राजापुर चला गया और अपनी ककेरी विधवा मौसी
को बुला लाया। इस बीच जो एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटना घटित हुई, वह
यह कि उसकी साइकिल वापस मिल गई और सवित्तरी ने बिना लाग-लपेट
के सीधे-सीधे बता दिया कि उसका भाई साइकिल चुराने वाले लोगों की
सोहबत में पड़ गया है और वे लोग उसे प्रति साइकिल बीस से लेकर चालिस
रुपये तक देते हैं।

"ई संजोग रहा, साहेब, कि आपकी साइकिल गंगवा हरामी ही गायब
किए रहा। हम तो सिर्फ शुबहे में बोली थी कि गंगवा रे, तुझे मेरी सौं, मरी
दीदी का मुंह देखो, जो तू झूठ बोले—पंडित साहेब की हीरो साइकिल तुम
लोगों के गिरो ने तो ना चुराई?' बुरी सोहबत में पड़ गया है, साहेब!
गरीबों के घर में चारों तरफ की आग है। सातवीं में पढ़ता था, स्कूल भी
छूट गया। बदजबान भी हो चला। एकदम गुस्से में बोला, 'जा साली,
माल पहुंचवा देंगे तेरे···कह रहा था कि तेरे नये साहेब के यहां कल पहुं-
चवा देंगे···कह देना आइन्दा से ताला लगा के रखा करें। पहाड़ी···'"

"पहाड़ी भुस्स कह रहा होगा, तुम छिपा लेना चाहती हो।" कहते
उसके मस्तिष्क में कौंधा कि 'कल पहुंचवा देंगे तेरे···' कहते हुए भी सवित्तरी
कुछ छिपा ले गई थी।

बहरहाल साइकिल वापस मिल जाने से जैसे पांव वापस मिल गए हों
वह काफी दुविधा अनुभव कर रहा था और उसने बीस रुपये गंगवा को दें
के लिए आगे बढ़ाए भी थे, मगर सवित्तरी के एकाएक बदल गए चेहरे
देखते ही जेब में वापस रख लिए।

पैसे की तंगी के कारण वह साइकिल के कैरियर पर ही बिठा लाना चाहता था मौसी को, मगर उन्होंने साफ कह दिया कि 'जनार्दन रे, मेरे लिए तो रिक्शा करवा दे। साइकिल पर मुझे चक्कर आता है।'

मौसी ने आते ही मीता को गले लगाया। खूब रोईं। सुनील को प्यार किया। अन्त में "यह जनार्दन तो, बहू, इसी इंतजार में रहता होगा कि मौसी मरेगी, तो एक दिन कंधा देने को ही आऊंगा। इसके बाबू के मरण और श्राद्ध के दिनों में आई थी, तब से अब आई हूं इस दर में, जब तू बीमार पड़ी है! खैर, मुसीबत में अपने ही काम आते हैं। आंखों से ही आसू फूटते हैं, घुटनों से कहां।" कहती सुनील वाली चारपाई पर लेट गईं। लेटे-लेटे ही पूछ लिया, "यह रसोईघर में बिजली जैसे घूमती छोकरी कौन है; बहू ?"

"महरिन है, मौसी ! सवित्तरी है इसका नाम।"

"ए सवित्तरी, जरा इधर तो आ।" मौसी का सिर रसोईघर की दिशा में घूम गया, "चहा बनाना तो जानती ही होगी ये ? थक गई हूं, रे जनार्दन !"

मौसी की ओर वह पलटी ही थी कि बगल में चारपाई पर पड़ी मीता की ओर करवट लेकर मौसी धीरे से फुसफुसाकर कुमाऊंनी में बोलीं, "हाय, यो रंड औरै देखण-चाण छ वे !"[1]

"क्यों वे, क्या नाम है तेरा ? सवित्तरी ? तेरा ब्याह हो चुका या नहीं ?" उन्होंने अपने प्रश्न को स्टोव सुलगाती सवित्तरी की पीठ पर कमंद की तरह फेंका।

जनार्दन ने देखा कि सवित्तरी अचानक के इस सवाल से हतप्रभ हो उठी और इनकार में सिर हिलाते हुए, वह मुरझा-सी गई।

"बड़ी ढांट होने तक अनब्याही ही रह गई वह तो !" मौसी ने आश्चर्य की मुद्रा में अपने सिर को हथेलियों का सिरहाना देकर, थोड़ा और ऊंचा कर लिया।

मौसी सिर्फ दो दिन ही रहीं मगर उनकी उपस्थिति सवित्तरी पर जैसे

---

१. हाय, यह रांड तो दिखने में बहुत ही सुन्दर है!

ी की स्थिति में ही सही, मगर सवित्तरी का घर के वातावरण पर—
कहना चाहिए कि उसकी मानसिकता पर—इस कदर हावी होते जाना
उसको चाहे जितना प्रीतिकर लगता हो, मगर पारिवारिक वातावरण
ाए स्वस्तिकर शायद, सिद्ध न हो पाएगा।
डॉक्टर रमेश चन्द्रा ने बता दिया था कि वे पहले ही दिन समझ गए
क बहुत ही सीवियर किस्म का निमोनिया है और इसके शिकंजे से निक-
और बीमारी की टूटन से संभलते वक्त लग जाएगा।

पांचवें दिन वह राजापुर चला गया और अपनी ककेरी विधवा मौसी
ा बुला लाया। इस बीच जो एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटना घटित हुई, वह
ह कि उसकी साइकिल वापस मिल गई और सवित्तरी ने बिना लाग-लपेट
क सीधे-सीधे बता दिया कि उसका भाई साइकिल चुराने वाले लोगों की
सोहबत में पड़ गया है और वे लोग उसे प्रति साइकिल बीस से लेकर चालिस
रुपये तक देते हैं।

"ई संजोग रहा, साहेब, कि आपकी साइकिल गंगवा हरामी ही गायब
किए रहा। हम तो सिर्फ सुबहे में बोली थी कि गंगवा रे, तुझे मेरी सौं, मरी
दीदी का मुंह देखो, जो तू झूठ बोले—पंडित साहेब की हीरो साइकिल तुम
लोगों के गिरो ने तो ना चुराई?' बुरी सोहबत में पड़ गया है, साहेब!
गरीबों के घर में चारों तरफ की आग है। सातवीं में पढ़ता था, स्कूल भी
गया। बदजबान भी हो चला। एकदम गुस्से में बोला, 'जा साली,
कल पहुंचवा देंगे तेरे…कह रहा था कि तेरे नये साहेब के यहां कल पहुं-
चवा देंगे…कह देना आइन्दा से ताला लगा के रखा करें। पहाड़ी…'"

"पहाड़ी भुस्स कह रहा होगा, तुम छिपा लेना चाहती हो।" कहते
उनके मस्तिष्क में कौंधा कि 'कल पहुंचवा देंगे तेरे…' कहते हुए भी सवित्तरी
कुछ छिपा ले गई थी।

बहरहाल साइकिल वापस मिल जाने से जैसे पांव वापस मिल गए हों।
वह काफी दुविधा अनुभव कर रहा था और उसने बीस रुपये गंगवा को देने
के लिए आगे बढ़ाए भी थे, मगर सवित्तरी के एकाएक बदल गए चेहरे को
देखते ही जेब में वापस रख लिए।

पैसे की तंगी के कारण वह साइकिल के कैरियर पर ही बिठा लाना चाहता था मौसी को, मगर उन्होंने साफ कह दिया कि 'जनार्दन रे, मेरे लिए तो रिक्शा करवा दे। साइकिल पर मुझे चक्कर आता है।'

मौसी ने आते ही मीता को गले लगाया। खूब रोईं। सुनील को प्यार किया। अन्त में "यह जनार्दन तो, बहू, इसी इंतजार में रहता होगा कि मौसी मरेगी, तो एक दिन कंधा देने को ही आऊंगा। इसके बाबू के मरण और श्राद्ध के दिनों में आई थी, तब से अब आई हूं इस घर में, जब तू बीमार पड़ी है! खैर, मुसीबत में अपने ही काम आते हैं। आंखों से ही आंसू फूटते हैं, घुटनों से कहां।" कहती सुनील वाली चारपाई पर लेट गईं। लेटे-लेटे ही पूछ लिया, "यह रसोईघर में बिजली जैसे घूमती छोकरी कौन है, बहू ?"

"महरिन है, मौसी! सवित्तरी है इसका नाम।"

"ए सवित्तरी, जरा इधर तो आ।" मौसी का सिर रसोईघर की दिशा में घूम गया, "चहा बनाना तो जानती ही होगी ये ? थक गई हूं, रे जनार्दन !"

मौसी की ओर वह पलटी ही थी कि बगल में चारपाई पर पड़ी मीता की ओर करवट लेकर मौसी धीरे से फुसफुसाकर कुमाऊंनी में बोलीं, "हाय, यो रंड औरै देखण-चाण छ वे !"[1]

"क्यों वे, क्या नाम है तेरा ? सवित्तरी ? तेरा ब्याह हो चुका या नहीं ?" उन्होंने अपने प्रश्न को स्टोव सुलगाती सवित्तरी की पीठ पर कमंद की तरह फेंका।

जनार्दन ने देखा कि सवित्तरी अचानक के इस सवाल से हतप्रभ हो उठी और इनकार में सिर हिलाते हुए, वह मुरझा-सी गई।

"बड़ी ढांट होने तक अनब्याही ही रह गई यह तो !" मौसी ने आश्चर्य की मुद्रा में अपने सिर को हथेलियों का सिरहाना देकर, थोड़ा और ऊंचा कर लिया।

मौसी सिर्फ दो दिन ही रहीं मगर उनकी उपस्थिति सवित्तरी पर जैसे

---

1. हाय, यह रांड तो दिखने में बहुत ही सुन्दर है !

ले की तरह पड़ गई । काम वह वदस्तूर पहले जितना, वल्कि कुछ ज्यादा
जी से करती रही, मगर वह घर के चारों ओर मंडराती गौरैया की जैसी
त्सुकता खत्म हो गई । पहले वह काम निवटा लेने पर भी वड़ी देर वैठी
रहती थी और लगातार मीता की टहल में रहती थी। मगर अव प्रायः
'अच्छा, वहूजी, हम चलित हैं ।' कहती वाहर निकल पड़ती थी ।

मीता की हालत यह थी कि दिन पर दिन वह तेजी से पस्त पड़ती जा
रही थी । वुखार अव थोड़ा उतरना शुरू हुआ था, मगर इस सप्ताह-भर
जितना तेज ज्वर रहा था और पसलियां जर्जर कर देने वाली खांसी—
उसकी आंखें जैसे गड्ढे में धंस गई थीं । चेहरा विलकुल फीका पड़ चुका
था और दो-चार शब्द कहते ही हांफ चढ़ जाती थी ।

एक दिन 'जरा रिक्शा करवा देता, जनार्दन, राजापुर होती आती ।
कल को लौट आऊंगी ।' कहा-भर था मौसी ने, कि जाने कैसे अपने को
साधे, मीता धीमे से मुस्कराई थी और कहा था कि, नहीं अव वह ठीक होने
लगी । वुखार एक-दो दिन में पूरा उतर जाएगा । अव वे भी अपने वच्चों
को देखें । स्कूल जाने वाले वच्चे हैं ।

"दसेक रुपये हों तो दे दे, जनार्दन ! इतने दिनों के वाद जा रही हूं,
जाने घर में क्या जरूरत हो, क्या नहीं । मौसा तेरे अव रहे नहीं । तू जानता
ही है, वड़े वेटे धर्मानन्द का ट्रान्सफर मेरठ हो गया है ।" कहते हुए मौसी
ने दस का नोट और अपना अस्तित्व घर में से जाल की तरह समेटा था
और जाते-जाते मीता के कान में कहती गईं कि 'वहू, मेरा कहा मानना
महरिन वदल लेना !'

जनार्दन वहुत तंगदस्त हो चुका था, मगर मौसी की वापसी मीता
खुद चाही है, इस सन्तोष में उसे दस रुपया थमाना खला नहीं । मौसी
छोड़ आने वह चौराहे तक गया। अव कहीं जाकर उसे इस वात का ठीक-ठ
अंदाजा हो पाया कि कैसे मौसी की उपस्थिति उन सवपर समान रूप से
गई थी और कि उनके आने से पहले तक सवित्तरी कैसे अपेक्षाकृत ज
जतन से घर संभाले थी ।

रात जव मौसी वाथरूम गईं थीं और सवित्तरी भी घर जा चुकी
मीता ने टूटती-सी आवाज में कितनी यातना के साथ कहा था कि 'यह

तो मौत की तरह सिरहाने बैठ गई। कान खाती रहती है कनखजूरे की तरह। खाट पर ऐसे पसरी रहती है, जैसे मुर्दे का पहरा कर रही हों। इन्हें निबटाओ। इनकी वजह से सवित्तरी भी टहल कम करने लगी।'

मौसी को रिक्शा करवाकर वह लौटकर घर आया, तो मीता के पास आते ही पाया कि वह गहरी मूर्च्छता में डूबी है और सुनील रो रहा है। वह बदहवास-सा हो गया और रोने लगा तो पड़ोस ने मिसेज वर्मा और दो-चार लोग आकर इकट्ठा हो गए। मिसेज वर्मा ने सलाह दी कि 'दौड़कर डॉक्टर को बुला लाइए। तब तक हम लोग देखेंगे।'

उसने तुरन्त साइकिल पकड़ी और तेज रफ्तार से चलाता डॉक्टर रमेश चंद्रा के घर पहुंच गया। डॉक्टर अपनी डिस्पेन्सरी में बैठे मरीजों को देख रहे थे। वह चाहते हुए भी सन्तुलन रख नहीं पाया और रोने लगा।

डॉक्टर चंद्रा उठकर उसके पास तक आए। सांत्वना देते बोले, "क्या बात है मिस्टर भट्ट? वाइफ की तबीयत कुछ ज्यादा खराब हो गई क्या?"

वह कुछ बोल नहीं पाया। डॉक्टर चंद्रा ने तुरन्त बैग संभाला, कमरे में बैठे मरीजों से माफी मांगते, थोड़ी देर में लौट आने को कहते, उसके साथ चल पड़े।

वह निरन्तर इस ग्लानि में डूबा रहा कि इससे पहले भी डॉक्टर तीन बार आ चुके, मगर फीस सिर्फ एक बार दी गई है, लेकिन जिक्र करने को यह वक्त उपयुक्त नहीं था। डॉक्टर ने पूछा, तो वह चुपचाप अत्यन्त संक्षेप में उनकी बातों को जवाब देता रहा।

"खतरे का तो कोई चान्स नहीं था, मिस्टर भट्ट! कल रात तो देखा था हमने। सी वाज कम्प्लीटली आउट आफ डैन्जर। मेरा खयाल है, बेहोशी सिर्फ कमजोरी की वजह से होगी।"

पूछने पर उसने बताया तो डॉक्टर चंद्रा बोले कि लगता है, फीडिंग नहीं हो पा रही है।

घर पहुंचने पर डॉक्टर ने मीता को इस बार बड़े धैर्य और एकाग्रता के साथ देखा। वह अभी भी मूर्च्छता में ही पड़ी थी। एक इंजेक्शन देने के

र डॉक्टर ने अपने हाथ से पानी के छींटे थोड़ी जोर से मुंह पर दिए और ता की आंखें खोलते ही, फिर उतनी ही त्वरा के साथ उठ खड़े हुए, मिस्टर भट्ट, आप बेकार परेशान न हों। मिसेज आपकी बिलकुल ठीक हैं। उठाएं-बिठाएं एहतियात से। बाथरूम सहारा देकर ले जाएं। 'कैप्सूल' अब दोनों बन्द कर दें। ये टानिक लेकर, चार घण्टे में एक बार पिलाएं। खाने में डबलरोटी का गूदा। मौसम्बी का रस। गुनगुने पानी में नीबू की शिकंजी। अभी यही चलने दें। कल सुबह से आलू के भुरते के साथ हलकी चपातियां। मूंग की पतली खिचड़ी। एहतियात बरतें। कल सुबह आकर हाल बताएं।"

वह गली तक उनके साथ-साथ आया बैग उठाए। अपनी शर्मिन्दगी व्यक्त की कि फीस के रुपये इकट्ठे पहली तारीख आने पर दे देगा।

डॉक्टर चंद्रा सामने से आते रिक्शे को रोककर, फुर्ती से बैठ गए और 'फिक्र न करें। कल सुबह आएं। हाल बताएं।' कहते हुए नमस्कार की मुद्रा में हाथ जोड़ लिए।

घर पर इकट्ठा लोगों की भीड़ धीरे-धीरे छंट गई। शिवचरन भी आया था और सवित्तरी को समझाता गया था।

रात, इतने दिनों की बाधित निद्रा और बेचैनी के बाद, पहली बार मीना गहरी नींद में सोई। नींद में डूबने से पहले, सिर्फ इतना कहा कि— 'मैं बेहोशी में ही तुम्हारा रोना सुन रही थी। मैं मूर्च्छित थी, मगर लोग का इकट्ठा होना मुझे सुनाई पड़ रहा था। सवित्तरी भी आई थी और उस रोना अलग से पहचान में आ रहा था, लेकिन अब तुम घबराओ मत। मेरे सिरहाने से उठकर चली गई है।'

सुबह होते-होते उसका चेहरा सचमुच मौत के शिकंजे में से निकल आ सा हो गया और उसने खुद ही इच्छा प्रकट की कि थोड़ी-सी पतली खि खाना चाहेगी।

सवित्तरी आ चुकी थी। जनार्दन ने उसे स्टोव पर पानी चढ़ा मूंग-चावल बनाने के लिए कहा, तो मीता बोली, "चोखी रसोई बन रिवाज तो अब पहाड़ में ही डूबने लगा, सुनील के बाबूजी, तुम यहां बाद में कब तक चलाते रहोगे? सवित्तरी ही पका ले, तो इ

हर्ज है ? यहां परदेस में हारी-बीमारी में सुधि कहां-कहां देखेगा कोई ?"

जाने कैसे,. लेकिन वह कह बैठा, "हां, सवित्तरी तुम्हारी ही तरह कपड़े बदलकर खिचड़ी पका ले, तो हर्ज क्या है ?"

"यानी, सिर्फ एक धोती में ? मगर एकवसना के लोभी पंडित महाराज, सवित्तरी की अभी शादी ही कहां हुई है, जो कपड़े बदलकर खिचड़ी बनाएगी ?" कहते हुए मीता ने व्यंग्य-भरी आंखों से उसे देखा, तो वह सकपकाकर रह गया।

सवित्तरी 'एकवसना' का मर्म ठीक से समझी थी या नहीं, मगर जिस तरह उसने धोती का छोर मुंह में ठूंस लिया—साफ था कि बात को समझ रही है।

"पहले थोड़ी-सी चाय और बना दे, सवित्तरी, फिर खिचड़ी का पानी चढ़ाना।" मीता ने कहा, "आज इतने दिनों के बाद पहली बार नहाया है, तो दूसरा जन्म हुआ लग रहा है।"

उसके काफी कमजोर हो आए चेहरे पर प्रफुल्लता और ज्यादा चटक दिखाई दे गई और उसने सुनील के साथ टूटी-फूटी जबान में बात करते हुए व्यस्त कर लिया अपने-आपको। मीता का मजाक अभी भी कानों को कुरेद रहा था। चाय ले आई सवित्तरी तो सुनील को उसे थमा दिया।

मीता ने अब तक चाय का घूंट भर लिया था, हंसने में कपड़ों पर बिखर गई। जनार्दन ने अपनी प्याली तिपाई पर रखी और तौलिये से मीता के कपड़ों पर गिरी चाय को पोंछना शुरू किया तो वह फिर हंस पड़ी—और अबके छोटी-सी खिलखिलाहट।

वह समझ नहीं पाया, सिर्फ इतना ही अनुमान लगाया कि बीमारी के दिनों में जो सवित्तरी के साथ उसका ज्यादा संवाद हुआ है और समय बीता है, इसीको लेकर मजाक करने की मुद्रा में है।

"क्यों, मीता, बेबात ही क्यों हंसी छूट रही है ?"

"अरे कुछ नहीं। मैं तो सिर्फ सोच रही थी कि पंडित आदमी हो—'बिहारी सतसई' जरूर घोटी होगी ?"

"ओहो, तुम तो बस पहेलियां बुझाने लगी, मीता ! लम्बी बीमारी के बाद बहुत मजाक के मूड में हो गई हो ?" फिर पहाड़ी में बोला कि 'इस

त्तरी के सामने कहीं कोई ऐसा मजाक न कर देना कि इसे बुरा लग ए । अनव्याही लड़की है, हमें सीमाओं का ध्यान रखना चाहिए।'

मीता ने धीमे से टोक दिया, "जो बात मुझे कहनी चाहिए थी, खुद कहे ले रहे हो—आखिर बात क्या है?" और फिर हंस पड़ी। सवित्तरी ो नजदीक आते देख, वह जोर से बोला, "सवित्तरी ने बड़ी सेवा की है तुम्हारी, मीता !"

"हां, इसमें क्या शक है, मगर लगता ये है कि स्वास्थ्य-लाभ तुम्हें ज्यादा हुआ है।" कहते हुए मीता ने उसकी ओर से अपना मुंह तुरन्त सवित्तरी की ओर कर लिया, "सवित्तरी, तुम भी चाय पी लो और यहीं आ जाओ। पानी अपने-आप खौलता है।"

सवित्तरी अपने-आपको समेटती-सी पास आ गई, तो मीता ने अपने निकट बिठा लिया। वह चारपाई पर थी, सवित्तरी नीचे फर्श पर। उसके माथे पर हाथ रखती बोली, "क्यों सुनील के बाबू, तुम्हारी मांजी को मरे कितने साल हुए होंगे?"

"क्यों, अचानक..."

'नहीं, जरा बताओ तो सही, याद करके..."

"यही कोई बीस-इक्कीस वर्ष..."

"और सवित्तरी, तुम्हारी उम्र कितनी हुई?" पूछा मीता ने, तो उसकी में आया और अपने को हलका करता-सा बोला, "यानी तुम ये करना चाहती हो कि यह सवित्तरी मेरी पूर्व जन्म की मां है?"

"हां, मेरा ख्याल यही है।" मीता ने संकोच में गड़ी सवित्तरी के माथे सहलाते हुए कहा, "इसने सचमुच सास की तरह ही घर संभाला मेरा। हीं तो जाने कितनी फजीहत होती। कैसे कहती थी उस दिन बिल्कुल बड़ी बूढ़ियों की तरह कि बहूजी, मुन्ना को बुखार में दूध न पिलाइए!"

मीता हंसी तो वह झेंप गई। धीरे-धीरे उबरती हुई बोली, "नन बनातीं तो एक बात थी, बहूजी, आप तो हमें सास बनाने लगीं!"

जनार्दन को लगा, जैसे किसीने पीठ पर जोर की चिकोटी काट है। सवित्तरी का 'ननद बनातीं, तो एक बात थी', कहना लगा, जैसे उ भीतर कोहरे की तरह एकत्र होती कोमल अनुभूतियों को किसीने स

से एक ओर झटक दिया है। उसे लगा कि खिन्नता के मारे मुंह का स्वाद जाता रहा। वह चाय की प्याली, दो-तीन घूंट चाय उसमें बाकी छोड़कर, रसोईघर की तरफ रखने जा रहा था कि मीता की हंसी ने उसके पांवों को थाम लिया, "अरी, नागवान, गनीमत समझ कि तुझे मैंने सास ही समझा, सौत नहीं समझ लिया।"

उसको जैसे काठ मार गया हो। एक क्षण उसे लगा कि अपनी बीमारी के दिनों में संचित सारे विक्षोभ को हंसी में उगल रही है मीता, मगर दूसरे ही क्षण मीता का यह कहना उसे सारे तनाव से मुक्त कर गया कि, "मैं तेरी बड़ी बहन की तरह हूं सवित्तरी! कभी मजाक में कुछ कह जाऊं तो बुरा न मान जाना। हम लोगों के लिए जैसे अपने घर की सयानी बेटी, वैसी तुम। फूल-सी खिली रहती हो तुम तो हम लोगों को भी अच्छा लगता है। मनहूस सूरत मुझे पसन्द नहीं। वो मौसी आ गई थीं ना? ऐसा लगता था, जैसे चुड़ैल सिरहाने बैठ गई हो। दो-तीन दिन और रह जातीं, तो मैं शायद मर ही जाती।"

पूरी चाय पीकर, जनार्दन यह कहता बाहर निकल गया कि 'जरा निगम साहब के यहां हो आऊं, मीता! कुछ पैसों के लिए कहना होगा। ट्यूशन पढ़ाता ही वापस लौटूंगा। तुम खिचड़ी खा लेना। मौसम्बियां खत्म हैं, लेता आऊंगा।'

'अरे अब कब तक इतना खर्च उठाते जाओगे, मौसम्बी अब रहने दो।' कहने जा रही थी मीता, तब तक वह बरामदा पार कर चुका।

जनार्दन के जाते ही सवित्तरी ने चाय का गिलास हाथ में उठा लिया और पीने लगी, तो मीता ने उसे तिपाई पर रखे डिब्बे में से कुछ बिस्कुट निकालकर दिए।

"हम तो समझी थी कि इस वक्त बीमारी के कारण आप चुप लगाए होंगी। अच्छी होते ही कहेंगी, 'सवित्तरी, अब हमारे यहां काम पर न आना।' हम सोचती थीं..."

"वो क्यों? इसलिए कि साहब तुमसे हंसने-बोलने लगे?" बीच में ही बात काटकर मीता ने पूछ लिया, तो सवित्तरी ने अपना सिर थोड़ा झुका

या। बोली, "अरे ना, बहूजी! ऐसी ओछी बात हम क्यों कहने लगीं।
म तो ये कह रही थीं कि आप सोचेंगी, जिस लड़की का भाई साइकिल-
ोर है, उसे अपने घर काम पर रखना ठीक नहीं..."

"आदमी की आंखें बोलती हैं, सवित्तरी! तुम कभी चोरी कर न
पाओगी...और फिर हम लोगों के यहां कौन धन-सम्पत्ति है। बंजारों का
सा डेरा है अभी तो। ला, जरा वो कोने वाला बक्सा तो इधर खींच ला।"

संदूक खोलकर, मीता ने एक धोती निकाली और फिर यथावत् बन्द
करके, वापस रखवा दिया।

"ले सवित्तरी, यह धोती तू ले जा अपने पहनने को।"

"बहूजी..."

"बेकार में संकोच मत कर, सवित्तरी! बड़ी बहन का दिया समझ के
पहन लेना। अच्छा, तू अब जल्दी से खिचड़ी बना डाल। तेरा बहुत हर्जा
हो गया मेरी बीमारी के पीछे। गनेशी अभी बहुत छोटी है।"

मीता को खिलाकर, जनार्दन के लिए खिचड़ी और पालक की सब्जी व
मूली ठीक से रखकर, सवित्तरी अखबार में लपेटी धोती हाथों में लिए,
अपनी छोटी बहन गनेशी के साथ बरामदा पार कर ही रही थी कि वापस
लौट आए जनार्दन की साइकिल ठीक सामने खड़ी हो गई।

"हम चलते हैं, साहेब!" कहती वह एक क्षण को ठिठकी और दूसरे ही
क्षण आगे बढ़ गई। उसने महसूस किया कि सवित्तरी के चलने में एक
खास क़िस्म का आभिजात्य है और उसका चलना लगभग बेआवाज होत

६

लगभग डेढ़ महीने बाद, माघ में मीता के माता-पिता, दोनों संगम नहाने आए। मीता को पूरे मनोयोग और निष्ठा के साथ गृहस्थी में रमा देखकर पिताजी ने भी संतोष व्यक्त किया और कहा कि रामनगर के सरायगी कालेज की नौकरी से मीता के द्वारा इस्तीफा दे दिए जाने का अब उन्हें कोई अफसोस नहीं रहा।

जाते हुए, मां जरूर इतना कहती गईं कि 'मिनू, तेरे बाबू कह रहे थे कि इतनी जवान, खूबसूरत और अनब्याही नौकरानी का घर में रहना ठीक नहीं।'

कहने को मन तो हुआ उसका कि 'मां, हमारे बाबू और मुनीर के बाबू में अन्तर है।' मगर सिर्फ सिर हिलाकर चुप लगा गई कि घर वापस लौटती मां से बात बढ़ाने की कोई जरूरत नहीं।

श्रीमती निगम के यहां से बुलावा उसे नवम्बर में ही आया था, मगर कुछ दिन आज-कल में निकल गए। कुछ बीमारी, कुछ बीमारी से उबरने में और फिर मां-बाबू आने वाले हैं और आज जबकि मां-बाबू को रामनगर वापस गए भी हफ्ता-भर होने को आ गया, तब पहली बार वह उनके घर जा पा रही है।

सावित्री ने मुनीर को नहला दिया था और कपड़े पहना रही थी। बोली, "निगम उकील की घरवाली को आप देखी हैं कभी, बहूजी?"

मीता ने पलटकर देखा, सवित्तरी के होंठों पर शरारत-भरी मुस्कराहट

"तुम्हारे साहब कभी-कभी जिक्र करते हैं।"

"सुनने से दिखाई पड़ने वाली औरत कहां है उकीलन ?"

"क्यों, ऐसी क्या बात है ?"

"साहेब के स्कूल की तो हेड मास्टरनी हैं, इसीलिए बेचारे ज्यादा कहते होंगे, बहूजी ! वैसे तो हमारी भी गुरुआइन हैं..."

सवित्तरी का अत्यन्त नाटकीय ढंग से जीभ टूंगना, मीता को भी हंसा या। बोली, "चलो—आज तो दर्शन तो हो जाई।"

"उकीलन के स्कूल में आप टीचरनी बनेंगी ? साहब बता रहे थे कि आप उकीलन से छै दर्जा बेसी पढ़ी हैं। हम तो चौथी पर ही बोल गईं।... अब पछताती हैं, जब उमर बीत गई।"

"साहब तुम्हें बड़ी बातें बताते हैं। और कुछ नहीं बताए ?"

"ख़ैर, ई बात हम खुदै जानती हैं, बहूजी, कि आप पप्पू भैया की खातिर बहना लेने चली गई रहीं !"

पहले तो मीता की समझ में कुछ आया नहीं। समझी, तो आगे बढ़कर क धौल जमाई सवित्तरी की पीठ पर, "तू क्या पंडिताइन है जो जान रही कि बहन ही ले आई हूं ?"

'हमरे मन में इच्छा है। लड़के ही लड़के ठीक नहीं।"

"सवित्तरी, अब तू हर तरह से सयानी होती जाती है, रे ! अक्ल से भी, ... से भी। गरीब घर की बेटी न होती तू, तो तेरे क्या रूप होता। परसों शिवचरन से बात चल रही थी तो कह रहा था कि 'जो लोग रिश्ता करने ...ते हैं, ये ही सुनाई पड़ता है कि नहीं शिवचरन, यहां, नहीं। जाने क्या ...खा है अभागिन के भाग में।'...जाने क्यों हम लोगों को भी तुझसे ऐसा ...ह हो गया कि तेरे जाने की चिन्ता रहने लगी है। एक दिन मिसेज ...वास्तव कह रही थीं कि 'आपके साथ तो वह ननदों के से तेवर से रहने ...गी है।...दूसरों के घर तो सुना है बस, जल्दी-जल्दी झाड़ू-पोंछा करके ...कल जाती है।'...मैंने कहा कि 'भाई, हम तो परदेसी हैं यहां, जिसने घराप...र लिया।' तो कहने लगीं कि 'ख़ैर, भट्ट साहब तो बहुत नेक-नज

आदमी मालूम पड़ते है।' मैंने कह दिया कि 'सिर्फ नेक-नजर ही नहीं, एक-नजर भी हैं!' तुरन्त 'सीरियस' हो गई और कहने लगी कि अन-ब्याही जवान लड़कियों का दूसरों के घर काम-काज करना फिर भी ठीक नहीं। पहले हमारे यहां भी आती थी, हमारे श्रीवास्तव साहब ने खुद ही बदल ली।' मैंने कह दिया, 'अब यहां दो-चार महीनों की बात और है। शिवचरन बेचारा खुद ही फिक्र में है कि पराये घर की अमानत अपने घर जाए···'"

"गरीब की बेटी की चिन्ता दूसरों को ज्यादा ही होती है, बहूजी!"

"यों तो ध्यान नहीं जाता, सवित्तरी, कि कौन कहां क्या काम करता है। तू अपनी छवि से आंखों में रहती है। मैं तो औरत जात हूं, मगर आज तू मेरी ही दी हुई धोती पहने आई है, तो खुद मुझे लग रहा है कि धोती धन्य हो गई।"

"लो, आप तो हमारा मजाक उड़ाने लगीं।···मगर हमें अपनी औकात मालूम है, बहूजी! बस, ये घर है, जहां लगता है कि हां, हम भी इंसान हैं। खुद बाबू पसन्द नहीं करते कि हम घर-घर डोलें। पिछले साल ट्यू[illegible] भी दिए थे, मगर लगातार चार-पांच महीना बीमार रहे, तो घर चलना मुश्किल हो गया।···आप बाबू के रिक्शे में बैठी होंगी, तो देखा ही होगा, कैसे हांफने-खांसने लगते हैं। अब सयानी होती जाती हैं, तो बाबू की तक-लीफ सबसे ज्यादा काटती है। बेटा होती, तो बापू की गत ये थोड़े ना होने देती। गंगवा सुमर तो पक्का हरामजादा निकल गया···"

वह रोने लगी थी, मीता ने माथे पर हाथ फेरते कहा, "[illegible] ऐसी गंदी बात नहीं कहते, सवित्तरी! उसे जरा हमारे यहां [illegible] उससे बातें करना चाहते हैं। अभी वक्त है। एक बार वहीं [illegible] पा जाएगा, तो पूरी जिन्दगी खराब हो जाएगी। अभी बच्चा [illegible] अच्छा, सुनील को जरा काजल लगा दे तो। सब सीखे रहेंगी [illegible] काम आएगा।"

दूसरी सुबह आई सवित्तरी तो मीता ने चाय देते पूछ लिया, "तुम निगम साहब के स्कूल में काम करोगी?"

काहे, बहूजी ? अच्छा, दाई का काम ? लगता है, आपकी जबरी दावत
...ल ? आप मास्टरनी हो गई वहां ?"
जनार्दन सब्जी लेने बाजार चला गया था ।
"निगम साहब कहीं दूसरी जगह भी स्कूल खोलने की सोच रहे हैं
...ाली जुलाई से । तब तक कुछ महीने उसी स्कूल में पढ़ाने को कहते थे ।
...ने फिलहाल मना कर दिया, सुनील अभी बहुत छोटा है।...और तबियत
...ी ठीक नहीं । कुछ नहीं रे, हम औरतों की जिन्दगी भी कुछ नहीं । बस,
...भेडकियों का-सा जीना है । पढ़-लिखके भी अकल नहीं आई हमें तो ।
सोचती हूं, सफाई करवा लें क्या ?"
"कौन आपके दर्जन, दो दर्जन हो चुके, जो आप ऐसी बातें करती
हैं ?"
"मैं भी पागल ही हूं, सवित्तरी, जो तुमसे ये सब बातें कर बैठती हूं ।
गया बताऊं, मिसेज श्रीवास्तव और शर्माइन लोगों से अभी जी खोलकर
बोलने जितनी आपसदारी बन नहीं पाई ।...हाथ की मजदूरी करने वालों
को बच्चे बोझ न लगते होंगे, सवित्तरी, मगर दिमाग और कलम की मज-
दूरी वालों की अब मुसीबत है । महंगाई का ये हाल है, एक बच्चे की ठीक
से परवरिश मुश्किल । मैं सोचती थी, कहीं किसी स्कूल में मैं भी पढ़ाने
लगूंगी तो बोझ बंटेगा, मगर जब तक यह सुनील साथ ले जा सकने बरा-
बर होगा, तब तक मैं तो फिर गू-मूत पोंछने की नौबत में आ जाऊंगी..."
"आप अभी से जाना चाहती हों, तो सुनील भैया की फिकर छोड़ दें,
बहूजी ! इन्हें हम देख लेंगी ।"
"अरे, नहीं, सवित्तरी ! घण्टे-दो घण्टे की बात नहीं । कम से कम छै-
सात घण्टे स्कूल में रहना होगा । तुम्हें दूसरे घर भी तो देखने होते हैं ।"
"सिर्फ दो घरों में ही हम जाती हैं, वो भी अब छोड़ ही देना चाहती
हैं । अच्छी आंख से नहीं देखती शर्माइन भी । कहती थीं कल शाम कि अ...
तुम्हारे पीछे-पीछे आवारागर्द लोग घर के सीढ़ियों तक आने लगे हैं ।...
इन नासपीटों को भी मौत आ जाय, चलना-फिरना हराम किए रहते हैं...
अब हम गरीब लड़की जात, हम किससे कहें कि पीछे-पीछे ना चला करें...
कुछ कहें भी तो तड़ाक से यही कहेंगे कि 'क्यों री, सड़क तेरे बाप की

से हो गई ?' बहूजी, कैसा नरक है हम गरीबों की जिन्दगी भी ! इन कुत्तों को कुछ कहने की ताब लोगों में नहीं, मगर हमें सुनाते वक्त जीभ सांप बन जाती है।"

"तो फिर तुम स्कूल में नौकरी क्यों नहीं कर लेती ?"

"उहूं। दाईगीरी न होगी हमसे। एक तो निगम वकील हमें ठीक आदमी नहीं लगते। उनके घर हम काम कर चुकी हैं। कई मास्टरनियों को हम देखी हैं बड़ी खुसर-पुसर है वकील से। दूसरे, यहां तो ये है कि घर से निकली, सीधे चली आई यहा। वहां दर्जनों बच्चों को आवाज देते जाओ और आवाजागिर्दों की चुहलबाजी सुनो। एक वो मुगरा बस्चालाल हमारे पीछे पड़ गया है। हमसे तो कुछ नहीं कहता, मगर बापू का जीव खाए रहता है।"

"तुमसे शादी करना चाहता है क्या ?"

"क तो चाहता है, बहूजी, मगर हम नहीं चाहते और न बापू चाहते हैं। बहुत लोफर किस्म का आदमी है। जोरू भागे अभी छै महीने नहीं बीते। कौन जानता है, वो क्यों भागी ? मुआ किसी फैक्टरी में नौकरी क्या करता है, सोचता है, मोहल्ले की सारी लड़कियां स्वयंवरी लिए डोल रही हैं।...थू..."

"हाय, तू तो बिल्कुल छोटे बच्चों की तरह थूकती है।"

"आप और साहब, दोनों चले जाया करें, बहूजी ! बच्चा को हम देख लेंगी। दस-बीस हमारी तनखा आप ही बढ़ा दें। दूसरे लोगन के घर जाने को जी नहीं बनता। दाक और हिकारत की आंख देखने वाले बहुत हैं, प्रेम और दया की निगा का अकाल है।"

"अच्छा तो, अभी साहब लौट आते हैं सब्जी मण्डी से, बात करती हूं। तुम्हें पैसा देना बुरा न लगेगा हमें।"

रात का खाना खा चुकने पर, थोड़ी देर अपनी शोध के सिलसिले में जनार्दन सीता से भी मदद लेता रहा। सोने लगे तो उसने कहा, "तुम पढ़ाने लगो, तो अच्छा ही है, सीता ! मुझे कुछ दिनों अपनी शोध के सिल-सिले में बनारस की तरफ भी जाना पड़ेगा, तुम स्कूल में रहोगी, तो निगम

ज्यादा एतराज न करेंगे। बस, किसी तरह मैं सिर्फ रिसर्च पूरी कर लूं, तो तुम भी एल० टी० कर लो।"

"सवित्तरी को हम लोग कितने रुपये तक दे सकते हैं ?"

"देखो, मीता ! अभी निगम साहब डेढ़-पौने दो सौ से तुम्हें ज्यादा देंगे, यह उम्मीद करना बेकार है।···फिर भी पैंतीस-चालीस तक तो हम दे ही सकते हैं।"

"बहुत संभाल के बतला रहे हो। तुम्हें क्या अभी भी यह भ्रम रहता है कि कहीं तुम सवित्तरी की तरफदारी करने लगोगे तो मैं आंखें बड़ी करने लगूंगी ?"

दोनों, इस वक्त, एक ही चारपाई पर सोए थे। उसने शरारत-भरी हंसी में विस्तार पाकर अपनी तरफ को बढ़ते मीता के चेहरे को आंखें गड़ाकर देखा और बोला, "शक तो, शायद तुम्हें है, मीता !"

"गलत है क्या ?"

"तुम सही समझती हो ?"

"तुम्हें सवित्तरी अच्छी नहीं लगती ?"

"अच्छी···"

"अच्छी से मेरा मतलब खूबसूरत और जवान से भी है।"

"बहुत टेढ़ा सवाल किया है, मीता, तुमने। लेकिन जवाब देते मुझे ज्यादा दिक्कत नहीं होगी। शुरू-शुरू में मैं कुछ विचलित जरूर हुआ था। लगता था, यह लड़की सपने में दिखी हुई-सी सामने आती है। महसूस होने लगा था कि यह अपनी मौजूदगी से स्थिति को मेरे लिए कुछ असामान्य बना जाती है। मुझे खुद भ्रम होने लगा कि इसको चोर-नजर से देखने लगा हूं।···लेकिन जब मैंने एकान्त मन से इसपर सोचा-विचारा तो लगा कि जैसी यह सवित्तरी है, इसको देखते किसी भी पुरुष के मन में इतनी उथल-पुथल तो बिल्कुल स्वाभाविक है। धीरे-धीरे···"

"धीरे-धीरे इस उथल-पुथल को स्वाभाविक मान लेने का अभ्यास बन गया—यही ना ?"

"आदमी का स्वभाव अब इतनी आसान चीज रह नहीं गया, मीता, जितना कभी आदिम युग में रहा होगा। सुन्दर और तरुण स्त्री के प्रति

आवेग अनुभव करना स्वाभाविक हो सकता है, मगर अपने इस आवेग को बर-तना आसान नहीं।"

"और उचित ?"

"नहीं, मैं इसे उचित भी नहीं कहूंगा। हम एक समाज के बीच में रहते हैं और उसकी पहली इकाई हमारा, खुद का परिवार है और स्त्री के मामले में ही नहीं, बल्कि किसी भी मामले में आवेग बरतने से पहले हमें इतना शायद, जरूर देख लेना कि इसमें परिवार का अहित तो नहीं।…और फिर दूसरों के हित-अहित की चिन्ता…"

"तुम अपनी शोध-सामग्री पढ़ने में लग गए। ग्रंथ और आदमी में बहुत फर्क है।"

"अच्छा, तुम्हारा ख्याल क्या है ?"

"वही, जो तुम्हारा है। हर आदमी अपने-आपको ज्यादा बेहतर जानता है। मैं तो, बस, तुम्हारी व्याकुलता को देखती रही हूं।…लेकिन मानना पड़ेगा कि हो तुम पंडित के बेटे! अपनी बेचैनी को आचमन के जल की तरह घोंटकर पी गए!"

मीता का हंसना उन दोनों के बीच के नाम-भर के फासले के बीच गिल-हरी की तरह दौड़ गया।

"रहे तो हम लोग पहले भी कई बार, और अच्छे-खासे अरसे तक साथ-साथ, मीता!…मगर तुम्हारा यह झरने का-सा झरना पहले कभी नहीं हुआ। बंधे पानी की तरह तुम अपने में ही सिमटी रह गईं।"

"मैंने अपने मायके में रहते बहुत सीखा, सुनील के बाबू! जो चीज मैंने गहराई से महसूस की, वह यह कि हमारी मां की उदासीनता और नीरसता है, जो बाबू को भटकन में डाले रही है। इसी एहसास से मैं डरी कि कहीं यह मेरी बेरुखी और उदासीनता मुझे भी किसी विपत्ति में न डाल , और मेरी जिन्दगी में एक शादीशुदा औरत होने के अलावा और कुछ की न रह जाए। मेरे मन में लगातार यह बात बोझ डालती गई कि या मुझे शादी से ही इनकार कर देना चाहिए था और या शादीशुदा होने बतौर एक बच्चे को लेकर यहां मायके में पड़े रह जाने की इस नियति तोड़ डालना चाहिए। इस बार मैं यह संकल्प करके चली

अपने को बूंद-बूंद तुम्हें दे दूंगी या अन्तिम रूप से किनारा कर लूंगी।"

"पहले तुम मास्टरनियों की तरह बोलती थीं, मीता, अब मेरे भीतर की चेतना की तरह बोलती सुनाई पड़ती हो।"

"तुम बहुत संवेदनशील हो और ज्यादा संवेदनशील होने के जोखिम होते हैं।"

"जोखिम ? ··जैसे···"

"जैसे···जैसे यही कि तुम अपनी भावुकता में आकर यही संकल्प कर डालो कि मुझ जैसी पढ़ी-लिखी, समझदार-सुन्दर और प्रेमी औरत के प्रति निष्ठावान रहना तुम्हारा फर्ज है—और सवित्तरी के प्रति मन के बिल्कुल अकेले कोने में भी किसी तरह की कोमल भावनाएं बनाए रखना···"

"सुनो, मीता, तुम कल से ही इस लड़की को आने को मना कर दो।" इस बार वह कुछ हतप्रभ हो चुका-सा, चुपचाप आंखें बंद कर, थोड़ी-सी करवट लेके सो गया, "बत्ती बुझा दो, मीता, नींद आ रही है।"

मीता उठी, बत्ती बंद करके, बिल्कुल सटकर सो गई। बोली, "जब आदमी अपने-आपको छिपाने की जरूरत महसूस करता है, तो रोशनी आंखों में चुभने लगती है ना?···और, भई, मैं मना करने वाली कौन ? तुम ही मना कर देना सुबह।"

वह तुरन्त कहने को हुआ कि 'मुझे इस संकट में न डालो, मीता !' मगर अन्ततः धीमी, निहायत असंलग्न-सी आवाज में, बोला, "ठीक है, मैं मना कर दूंगा।"

"तुम तो गुस्सा होके कह रहे हो ? शांत मन से कहो कि 'ठीक है, कल सुबह सवित्तरी से मैं खुद ही कह दूंगा कि सवित्तरी, अब मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं रही।···तुम्हारा संदेश सुनते ही···"

"मुझे क्यों कहूं ? 'हमें जरूरत नहीं रही' कहूंगा।···"

"अच्छा, चलो, यही कह देना। अब उठो और अपनी चारपाई पर सो जाओ।"

"मेरी चारपाई तो यही है···"

"हमारी चारपाई नहीं कहा तुमने ?" मीता का आत्मीय भाव से हंसना कमरे में भरे अंधेरे में घुलता चला गया।

सुबह सवित्तरी आई, बरामदे में पूजा-पाठ करते जनार्दन के समानान्तर एक क्षण को रुकी और पांव पोंछकर, भीतर आने को हुई कि भीतर से मीता ने जोर से पुकार लिया, "सवित्तरी, कल रात तुम्हारे साहब कह रहे···"

उसने जानबूझकर वाक्य को अधूरा छोड़ दिया और 'गजाननं भूत गणादि सेवितं' जपते-जपते एकाएक पलटकर देखते जनार्दन के खिसिया जाने को शरारत के साथ घूरकर देखा और फिर अपने अधूरे वाक्य को यह कहते हुए पूरा किया कि "साहब कह रहे थे कि जब घर संभाल लेने का जिम्मा सवित्तरी ले ही रही है, तो तुम स्कूल में पढ़ाने से इनकार क्यों करती हो ?"

उसकी शरारत-भरी आंखों को सवित्तरी ने भी अपने चेहरे पर की त्वचा को स्पर्श करता-सा महसूस किया, और वह संकोच से गड़ी-सी तेजी से भीतर चली गई।

चाय का पानी मीता चढ़ा चुकी थी, बनाई सवित्तरी ने।

जनार्दन पूजा-निवृत्त होकर, भीतर कमरे में आया और प्रसाद देने लगा तो मीता ने कहा, "सवित्तरी को खुद ही क्यों नहीं देते, पंडित ? कुंवारी कन्या को प्रसाद सबसे पहले देना चाहिए।"

अपना कहना समाप्त करके, सवित्तरी के दायें हाथ की कलाई पकड़कर उसने अपने हाथ से उसकी हथेली को जबरदस्ती जनार्दन के सामने फैला दिया, तो सचमुच वह मोहाविष्ट हो गया।

नहीं, सवित्तरी की हथेली के रंग को गुलाबी के अलावा और कुछ नाम दिया नहीं जा सकता। रेखाएं ऐसी, जैसे रक्तकमल का सम्पूर्ण हो चुका पत्ता सामने हो। गहरे ताल में के जल के हवा के स्पर्श से धीमे से कांप उठने की तरह, सवित्तरी के सारे अस्तित्व में दौड़ती-सी संकोच की लहर को देखते हुए भी यही लगता है कि कोशिश करने पर, छुआ जा सकता है।

"सवित्तरी, तुम्हारी बहूजी बहुत मजाकिया स्वभाव की हैं। इनकी बातों का बुरा न मान जाना कहीं।" किसी तरह जनार्दन ने अपने-आपको साधते हुए यह बात कही और चाय की प्याली उठाकर, दीवाल से लगी छोटी-सी मेज की तरफ निकल गया।

१०

मीता का 'विनोदिनी कन्या पाठशाला' में पढ़ाने लगना, सचमुच आस-पास में चर्चा का विषय बन गया कि कोई पहाड़िन टीचर आई है और, सुना है, बहुत अच्छा पढ़ाती है।

अपने आत्मीयतापूर्ण व्यवहार से उसने श्रीमती निगम से लेकर बाकी की सारी अध्यापिकाओं और दाइयों तक को वश में कर लिया और बच्चों के बीच वह 'गोरी टीचरजी' के रूप में लोकप्रिय हो गई।

अपने किंचित् सुनहलापन लिए-से गोरे रंग और अपेक्षाकृत लम्बे कद में वह सचमुच दूसरों से अलग दिखाई पड़ती है। खुद निगम साहब ने एक दिन सबके सामने कह दिया कि 'आपको तो यूनिवर्सिटी में लेक्चरार होनी 'हिए।'

बाबू की चिट्ठी मई में ही आ गई थी, और जनार्दन को भी आपत्ति नहीं थी, मगर मीता ने प्रसंग को टाल दिया। आखिर कब तक गर्मियां पहाड़ पर वापस जाकर काटी जाएंगी और वह भी मायके में! एक महीने के लिए भी जाने का मतलब होगा, अगले कई महीनों तक के अपने 'बजट' को घपले में डाल लेना। यहां पहुंचते ही पहले बीमारी में और फिर मां-बाबू के आने में अतिरिक्त रूप से खर्च उठाना पड़ा है और अब कहीं जाकर, इन चार महीनों में स्थिति थोड़ी-सी संभली है। इसके अलावा, घर पर ही 'ट्यूशन' देने लगने की व्यवस्था कर लेने से जनार्दन का साइकिल पर लोगों के घरों का चक्कर काटना बंद हुआ है और इस सिलसिले को टूटने नहीं

देना है।

पहले सिर्फ एक कमरा था, अब इससे लगा कमरा भी किराये पर मिल गया है। हालांकि कमरा अपेक्षाकृत छोटा है, मगर आंधी-बारिश के वक्त आठ-दस बच्चे सुविधा से पढ़ने बैठाए जा सकते हैं, जबकि अभी सिर्फ पांच बच्चे आते हैं।

जनार्दन अब बाहर की ट्यूशनों के नाम पर सिर्फ अलोपीबाग जाता है, निगम साहब के दोस्त के बच्चे को पढ़ाने, जिसके बारे में उनको भ्रम है कि शायद वह उन्हींका बच्चा है।

वह ट्यूशन से लौटता, राधा भवन वाले चौराहे पर पहुंचा ही था कि उसे किसीके जोर से चिल्लाकर बोलने की आवाज सुनाई पड़ी और लगा, आवाज परिचित है। सड़क पर पर्याप्त रोशनी नहीं थी और उसे चेहरा साफ दिखाई नहीं दिया, मगर उसने अनुमान लगा लिया कि सवित्तरी ही है।

सवित्तरी के पास खड़ा व्यक्ति अपने बाहरी खाके में किंचित् उचक्का ही मालूम पड़ रहा था, मगर इतना साफ था कि सवित्तरी से उसका परिचय है।

सवित्तरी जिस तरह कुछ सकपकाई और कुपित-सी खड़ी थी, उसे लगा, सवित्तरी की सहमति के विपरीत कुछ हुआ है और वह यह कहता थोड़ा निकट चला आया कि, 'सवित्तरी, क्या बात है, यहां इस तरह क्यों रुकी हो?'

जनार्दन को देखते ही, साइकिल की टेक लिए खड़ा वह व्यक्ति तेजी से अपने को समेटता बैरहना की दिशा में निकल गया।

अभी भी कुछ परेशान-सी सवित्तरी से उसने कहा, "घर वापस जा रही हो या कहीं काम पर जाना है?"

सवित्तरी अब भी निःशब्द ही खड़ी रह गई, तो उसने धीमे से कहा, "चलो, साथ-साथ चलते हैं।"

उसने अनुभव किया कि जाने क्यों अचानक मन में यह आया कि यदि सम्पूर्ण एकान्त होता, तो वह सवित्तरी को साइकिल के कैरियर पर बैठ जाने को कह बैठा होता।

"नहीं, साहेब, आप चलें। आपके साथ हमारा जाना ठीक नहीं।" कहने के साथ ही पहले सवित्तरी का पूरा चेहरा खिन्नता और संकोच से भर गया, और फिर वह तेज कदमों से अपने घर की दिशा में मुड़ गई, बिना उसकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किए ही।

घर पहुंचकर रात को सोते वक्त उसने मीता से जिक्र किया तो बोली, "अरे वही बच्चालाल होगा। सवित्तरी से शादी करने को दीवाना है। सुना है, यहां तक कहता है कि 'सवित्तरी, हम बच्चालाल नाम ऐसे ही नहीं रख लिए हैं, तुमसे बच्चा बनाने की खातिर रखे हैं।' उम्मीदवार तो और भी बहुत-से हैं…"

"उस साले लोफर की तो चमड़ी खींच लेनी चाहिए थी!" अचानक ही उसके मुंह से निकला और काफी आवेग के साथ।

"बड़ी हिर्स महसूस होने लगी तुम्हें, बात क्या है पंडित? आप तो बिल्कुल प्रतिद्वन्द्वी-भाव से भर गए हो?"

हालांकि मीता ने शुद्ध विनोदभाव से और हंसते हुए कहा था, मगर वह थोड़ा खिसिया गया।

"सुनो, आप किसीसे उलझने के चक्कर में न पड़ना। ये पहाड़ नहीं है, भैया! यहां तो महा छुरेबाज किस्म के लोग रहते हैं।"

"मैंने सवितरी को इस तरह चिल्लाकर बोलते पहली बार सुना…"

"अरे, सुनी न के बाबू, जितनी और जैसी वह हम लोगों को दिखती है सवितरी, सिर्फ उतनी नहीं है। वह खुद एक दिन कह रही थी, 'शक्ल से हम भले ही दब्बू दिखती होंगी, बहूजी, मगर बस्ती के लोफरों की अभी ये मजाल नहीं कि कोई छू दे। कुत्तों की तरह पीछा भले ही कर लें।'…मुझे तो यह लड़की एक समस्या मालूम पड़ने लगी।"

"तुम्हें क्या लगता है, मीता, वह बदमाश किस्म की लड़की है? तुम तो बड़ी पैरवी करती रही हो उसकी?"

"खैर, शुबहा कर लिए जाने का डर न होता, तो तुम भी पैरवी ही करते होते, पंडित!" मीता ने उसके माथे पर आए बालों को पीछे लौटाते हुए फिर मजाक किया, "बदमाश होती, तो तुम्हें फायदा ही पहुंचा होता ना? मैं

तो बिल्कुल दूसरी बात कह रही थी। इस लड़की
'ईगो' है। कहती है, जैसे-तैसे आदमी से शादी कर
अच्छा। चलने-फिरने, खाने-पहनने में ही नहीं दे
बरतती है वह ? उसकी बहन गनेशी है, उसमें कहं
मुझे शुरू से ही जाने क्यों लगता आया है कि क
की उपज तो नहीं ? मोहल्लेवालियों में कुछ खुसर

पसंद नहीं
मन

"कभी-कभी तो, मीता, तुम भी शब्दों का ऐसा बीहड़ इस्तेमाल करती हो कि गेहूं-धान की उपज नहीं हुई, आदमी की उपज हो गई।"

"उपज सबकी सृष्टि के नियम से ही होती है।"

"बस, बस ! अब बहुत मंडन मिश्र की घरवाली न बनो···"

पंडित, मैं मंडन मिश्र की घरवाली बनूं, न बनूं मगर तुम कहीं बच्चा-लाल न बन जाना !" कहते हुए, मीता ने करवट बदल ली और बड़ी देर तक हंसती ही रह गई।

"सुनो, मीता, इस सवित्तरी ससुरी को लेकर तुम हमेशा मेरी टांग खींचती रहती हो···"

"दबवाती भी तो हूं।"

मीता की आवाज उसके सारे अस्तित्व को तेज और तीखी हवा की तरह झकझोर गई।

"वो तुमने तो खुद कहा था···मैं तो मजाक कर रहा था।"

"ओहो, तुम तो बच्चों की तरह नाराज होने लगते हो, पंडित !" कहती हुई वह उसकी ओर पलटी, तो पाया कि वह दूसरी तरफ करवट बदल चुका है।

बोली, "अरे, तुम थके-मादे आए थे। तुमने मुझसे कहा था, मैं सुनील को दूध पिला रही थी, मैंने सवित्तरी से कह दिया।···और मैं देख तो रही थी, सिर्फ घुटनों तक ही तो दबाया था बेचारी ने !···दूसरे दिन बहुत शर्मिंदा हो रही थी कि 'बहूजी, आप सोचती होंगी, कैसी बेशरम लड़की है ! एक बार को ये भी न कहा कि बहूजी, हमसे न होगा। क्या बताएं, हम भूल ही गईं। साहेब इतने भले आदमी हैं···' मुझे ऐसा लगता है, तुम उसके लिए प्रतिमान बनते जा रहे हो।···कल्पना-पुरुष !"

। में सिर्फ शरारत है, यह उसे स्पष्ट लगा।

"नहीं, ,' ? किस बात का प्रतिमान ?"

कहने के ' पंडित, यही कि काश, मेरा दूल्हा भी ऐसा ही हो।...सुबह भर - 'हा-धोकर, स्वच्छ धोती पहने, नंगे वदन पर पीली, उज्जर जनेऊ F ण किए पूजा की चौकी पर बैठा हो, तो ऐसा लगे, जैसे सूरज भगवान अपना धाम त्यागे भगवती की पूजा कर रहे हों..."

"इधर तुम बहुत ही ज्यादा शरारती हो चली हो, मीता ! खूब मजाक बना लो..."

"अरे, पंडित महाराज, ये मैं मजाक नहीं बना रही हूं, सवित्तरी के शब्दों को दोहरा भर दे रही हूं।...तुम्हें याद है, जब मां-बाबू आए हुए थे और संगम नहाने सवित्तरी भी हम सबके साथ गई थी ?"

उसने कुछ जवाब नहीं दिया। करवट लिए पड़ा रहा।

"वहां तुम सूरज महाराज के उगते-उगते, कमर तक पानी में खड़े और अंजलि में फूल लिए सूर्य-नमस्कार की मुद्रा में खड़े हुए थे। तुम्हारे गोरे वदन पर स्वच्छ पीली जनेऊ धनुष पर की रेशमी प्रत्यंचा मालूम पड़ रही थी।...और मेरे साथ नाव पर बैठी सवित्तरी तुम्हें एकटक ऐसे देख रही थी, जैसे तुम्हारी छवि को गंगाजल की तरह अपनी आंखों में भर लेना चाहती हो..."

"ये सब तुम ठीक नहीं कर रही हो, मीता ! उस परायी जवान लड़की ं लेकर इस तरह की बातें करना ठीक नहीं। और हालांकि मैं मानता हूं ये सारी बातें तुम विनोद में कह रही होगी, मगर कभी-कभी आदमी १८ इस तरह की बातों का बहुत अस्वाभाविक प्रभाव पड़ता है।...तुम मुझसे अलग नहीं हो और इसीलिए मैं कह सकता हूं कि उस लड़की को लेकर अफसोस महसूस करने की बात जहां तक है—हां, मैंने इस तरह की कमजोरी महसूस की है। सचमुच कितना दुखदायी होता है गरीब घर की सुंदर बेटी का जीवन, यह अब अपनी आंखों के सामने है, मीता ! मैं ये बात दोटूक कहना चाहता हूं कि दूसरों के घर चौका-बरतन करते जितनी सामान्य यह लड़की नहीं। और विश्वास मानो, मीता ! मैं बचना चाहता रहा हूं। मैंने बचने की कोशिश की है।... मैंने एक लम्बे विराम के बाद

तुम्हें फिर से पाया है और अब मैं कोई बात ऐसी होने देना पसंद नहीं करूंगा, जिससे तुम्हें तकलीफ हो···और न यह कि जीवन भर के लिए मन में यह पश्चात्ताप रहे कि गरीब की बेटी से ज्यादती हो गई।"

"अरे पंडित, आप तो ऐसे सफाई देने लगे जैसे सवित्तरी वरमाला लिए आपके सामने खड़ी—'आओ, प्रियतम! आओ, प्रियतम!' पुकार रही हो! मीता ने उसको पीठ की तरफ से ही अपनी बांहों में भर लिया और थोड़ा-सा अंतराल देकर बोली, "बेकार ही इतना भावुक होने लगते हो तुम। जो तुम सफाई के तौर पर बक रहे हो, मुझे इन सारी बातों का भीतर से इत्मीनान है। तुम्हें मुझसे सवित्तरी प्यारी हो सकती है, यह कल्पना भी कहीं मुझमें हो सकती है? मैं तो बस, तुम्हें चोर नजर रखते देखती हूं और मजा लेती हूं।"

इस बार जर्नादन तेजी से उसकी ओर पलट गया, "तुम्हारा यह मजा लेना कहीं तुम्हें भारी पड़ गया तो···?"

"बच्चे हो तुम। पति का विश्वास प्राप्त हो तो फिर उसका किया कुछ भी औरत को भारी नहीं पड़ता। पुरुष की निष्ठा का केन्द्र मेरे अलावा कहीं नहीं, यह आश्वस्ति मन में हो, तो उसकी नजरों का केन्द्र कौन है, यह फिक्र जाती रहती है। इसके बाद पति जो भी करता है, वह अकेली औरत···"

"नजरों का केन्द्र बदलने के साथ-साथ निष्ठा का केन्द्र भी तो बदल सकता है, मीता!"

"नहीं, मैं निष्ठा को ऐसी ढलवां चीज नहीं मानती। औरों की छोड़ो, लेकिन अगर तुम्हारी नजरों का केन्द्र कहीं और हो जाए, तो मैं इसे तुम्हारा नहीं, अपना जुर्म मानूंगी।"

"ऐसा क्यों?"

"ऐसा इसलिए कि जिस निष्ठा के साथ तुम मुझे लाए हो, उससे तुम सिर्फ तभी फिसलोगे, जब मैं तुम्हें अकेला छोड़ दूंगी। पत्नी होना अगर पुरुष की संगिनी होना नहीं है, और अगर अपने साथी के डूबने-उतरने में अपना खुद का डूबना-उतरना भी शामिल नहीं, तो फिर ऐसी शादी से तलाक अच्छा है।···मैं दूसरी बात कह रही थी। पति-पत्नी में तेरा-मेरा नहीं,

मारा चलता है। विधाता की इस सृष्टि को कोई क्या करेगा, जनार्दन! ारे बंधन बाहर के हैं, भीतर के नहीं। मेरे लिए तो आश्चर्य की—कह सकती ूं कि परितोष की भी—बात यह है कि तुम रस्सी से बंधे बछड़े की तरह टुकुर-टुकुर ताकते-भर रह जाते हो और मुझे तुमपर दया आने लगती है। और विश्वास मानो, अगर मुझे यह अंदेशा ना होता कि बात आगे बढ़ने पर दूसरी तरह की समस्याएं पैदा हो सकती हैं, तो मैं तुम दोनों को और निकट आते देखना चाहती…"

"तुम, शायद, यह महसूस नहीं कर रही हो, मीता, कि बहुत 'एबनार्मल' किस्म की बात कर रही हो, तुम!"

"एक लम्बे वक्त तक तुमसे फासले पर, और तुम्हारी इस उपज के साथ, रहने के दिनों तुम मुझे—मैं क्या बताऊं कि कितने याद आते रहे हो। साथ थी, तब न हो पाया। फासले पर हुई, तो मेरा औरत होना मेरे ही भीतर इकट्ठा होता गया, सुनील के बाबू!…जब तुम मुझे वापस लेने आए थे, तुम जो खुद कह रहे थे कि शंकित और चौकन्ने थे—मैं तुम्हें लगातार आंखों से छान रही थी। तुम्हारे बोलने को भी आंखों से देखती थी मैं। रास्ते में मेरे गुम-सुम रहने से तुम दुविधा में थे…और मैं इसमें, कि यह बंधा जल सबके सामने न फूट पड़े। तुम सोच सकते हो कि इस कल्पना से मुझपर क्या बीती होगी कि हो सकता है, अब तुम कभी मुझे अपने पास न बुलाओ? हो सकता है, और दो-चार साल तक मुझे यों ही मायके में छोड़ देते तुम? और हो सकता है, आखिर मैं झख मारकर खुद तुम्हारे पास चली आती…मगर विश्वास करो, मैं फिर यह आज की मीता न होती। मैं तुम्हारे साथ होती, मगर फासला हमेशा बना रहता और फिर तुमसे अपना बुरा कभी होता, तो वह सिर्फ तुम्हारा किया होता।…तुम्हें याद है, सुनील के बाबू! यहां पहुंचने की पहली रात हम लोग उजाला होने पर सोए थे। कितना बोली थी मैं उस दिन? कमरा भर गया लगता था।"

"आज भी कुछ वैसा ही इरादा दिखाई दे रहा है…" जनार्दन ने मुस्कराते हुए कहा, तो मीता ने छोटी बच्ची की तरह अपना सिर उसकी छाती से टिका दिया, "बस, अब नहीं बोलूंगी।"

ऐसा कतई नहीं है कि सुबह, इस वक्त, वह दूर से आती सवित्तरी को देखने के बाद 'दुर्गा सप्तशती' का पाठ शुरू करता हो। और सवित्तरी के बारे में तो खैर, यह सोचना ही नहीं चाहिए कि वह ठीक इसी क्षण पूर्व-नियोजित ढंग से उपस्थित होती होगी। लेकिन, संयोग ही इसे कह लिया जाए कि इधर यह देवी-स्तुति में होता है और उधर से वह प्रकट होती है।

उसे तुरन्त यह भी याद आ गया कि कल शाम उसके साथ चलकर पहुंचा देने के प्रस्ताव को सवित्तरी ने दोटूक टाल दिया था और इस बात पर मीता का कहना यह था कि बच्चालाल ने उसपर यह लांछन लगाना शुरू कर दिया है कि वह पहाड़ी मास्टर के चक्कर में पड़ी हुई है।

सवित्तरी रोज की ही तरह, आवाज न करते कदमों से बरामदे में बिछे कट्टे पर पांव पोंछती भीतर चली गई।

उसने अब साफ-साफ अनुभव किया कि दुर्गा सप्तशती के पाठ में अन्दर चली गई सवित्तरी के बारे में सोचना भी जुड़ गया है। पहले सवित्तरी के आने के कतई नहीं था कैसे कहे, मगर अब तक शायद सिर्फ हवा की-सी शकल में था। अनुभव होता था, दिखता नहीं था, मगर इस वक्त जंगल में की धुंध की तरह उग आया है।

कल अन्त-अन्त में क्या कहा था मीता ने कि आदमी का जीवन तिलस्मी किस्म का है और निहायत गए-बीते आदमियों के जीवन में भी कुछ न कुछ ऐसा हमेशा बना रहता है कि जिजीविषा बुझती नहीं। उसने फिर दोहराया था कि 'अब हमारे बाबू को ही ले लो···'

'तो तुम क्या वैसा ही तिलिस्म अपने यहां भी खड़ा करना चाहती हो?' उसने मजाक किया था और मीता ने निहायत इतमीनान से कह दिया था कि 'नहीं, वैसी नौबत हमारे यहां नहीं आएगी। बाबू और तुममें फर्क है। तुम मेरे बाबू पर नहीं, अपने ही बाबू पर गए हो!'

किसी तरह पाठ निबटाया उसने, मगर यहीं अनुभव किया कि सप्तशती का पाठ अब पहले जैसा किताबी-भर नहीं रह गया। संस्कारों के चलते, वह काफी ग्लानि अनुभव करता है, मगर अब उसे अक्सर देवी-प्रतिमा ठीक वैसा ही रूपाकार ग्रहण कर लेती-सी प्रतीत होने लगती है, जैसी—और जिन

शब्दों में—वह स्तुति कर रहा होता है।

हे जगदम्बा, कैसी है यह तेरी मोहिनी माया—पत्थरों पर दूब की तरह उगती हुई-सी? कहां, मन के किस कोने में यह कोरी जगह थी, इस सवित्तरी नाम की लड़की से साक्षात्कार से पहले? कितनी-कितनी वर्जना और अन्तर्बाधाओं के कांटों के बीच फूल-सा खिलता और सारे अस्तित्व में एक अबूझ गन्ध बिखेरता हुआ-सा यह अपना नर होना?

सीता क्यों कहती होगी कि 'जब तुम उस दिन गंगा की धारा में सूर्य को अर्घ्य देने खड़े हुए थे…तब तुम्हें सवित्तरी…'

तो जो कल दोटूक इनकार इसने कर दिया, वह सिर्फ अपनी और जनार्दन की बचत के लिए था और मन में राग कहीं जरूर है?

कितनी बार, एकान्त में, यह भी मन में आया है कि सवित्तरी को घर के काम पर से अलग कर देना ही ठीक होगा, मगर ऐसा तय कर लगने के क्षणों में ही अपनी मोहग्रस्तता ज्यादा साफ दिखने लगती है। जाने क्यों मन में एक लहर-सी बार-बार उठती है कि जैसा राग उसके मन में है, वैसा ही अनुराग—मर्यादा और विवेक से बंधन—कहीं सवित्तरी के भीतर भी सच-मुच है या नहीं? उसके चले जाने के बाद फिर कभी यह अवसर न होगा कि इस सनातन किस्म के राग को जाना जा सके, जो सामने के दर्पण, और पांवों के निकट के जल में समान रूप से प्रतिबिम्बित होता है।

कभी-कभी सवित्तरी ठीक उसकी आंखों के सामने होती है—और-सशीशे की तरह! कभी-कभी सवित्तरी ठीक थोड़े-से फासले पर होती है, जैसे पांवों की पहुंच के आस-पास की झील हो!

सवित्तरी ने 'साहेब, बहूजी चा पीने को बुलाती हैं।' कहा और सुनील को ठीक से संभालते हुए अपने कंधे पर कर लिया, तो वह एकबारगी अच-कचा गया। उसे लगा, सवित्तरी ने जो कुछ कहा है, वह फासले पर से नहीं. बिल्कुल बांह पकड़कर कहा है।

सवित्तरी का चलना ही नहीं, स्पर्श करना भी कितना बेआवाज और न्तुलित होता है, यह खूब जानता है। उस दिन के, पिण्डलियों पर के वित्तरी की अंगुलियों के स्पर्श अभी गए नहीं हैं। ब्लैक-बोर्ड की ऊपरी तह पर की सफेद खड़िया की लिखावट को वह 'डस्टर' से साफ करता

रहता है। लड़की के भीतर कहीं छुपा लिया हो तो, उसे छिपाने का को[ई]
उपाय होगा ?

दूसरों से—यहां तक कि साल आपसी समझदारी और विश्वास के बाद भी मीता तक से—छिपा लेना जितना ठीक हो, और शायद, मगर खुद अपने से यह अनुभूति अन्यत्र कहां से जाकर छिपाई जाए कि पिछली पर के वे सारे स्पर्श काठ के भीतर की सिलावट हो गए हैं ? शायद, अवस्था में मिट जाएं, जब त्वचा हड्डियों से जा लगती है और बीच से का सारा जीवन-रस विलीन हो चुका होता है ? और फिर भी नहीं, तो शायद, इस देह के अन्त के साथ···

भीतर पहुंचकर, वह चाय पीता रहा, मगर महसूस लगातार नहीं करता रहा कि उसकी मानसिक अस्त-व्यस्तता मीता से छिपी नहीं रहेगी। आज रात वह फिर देर तक मीता से बातचीत करेगा।

"साहेब, चा और लेंगे ?"

सवित्तरी का पूछना जैसे किसी पोटली में बंधे पत्थर की तरह उसकी कलाई पर आ गया और उसे लगा कि हाथ से की प्याली गिरते-गिरते बची है।

किसी तरह 'नहीं, बस।' कहता वह उठा और खूंटी पर से थैली की टोकरी उतारता बाहर निकल गया।

पता नहीं, मीता सचमुच हंसी या नहीं, मगर उसे काफी दूर निकल आने तक यही लगता रहा कि मीता का खिलखिलाना उसके पीछे-पीछे पिल्ले की तरह दौड़ा चला आ रहा है।

११

जून बीत चुकने पर स्कूल खुले तो मीता ने कहलवा दिया कि अब वह बच्चों को पढ़ाने नहीं जाएगी ।

रात को स्वयं छोटी-सी मेज चारपाई के आगे लगाकर, रोज की ही तरह दोनों कुछ देर साथ-साथ बैठे काम करते रहे । सुनील में यह अच्छी आदत है कि जहां उसने रोटी खाई थोड़ी-सी और दूध पिया, बस, थोड़े-से क्षणों को मीता ने उसे अपने वक्ष से लगा लिया और वह गहरी नींद में । इस चारपाई से उठाकर दूसरी में सुलाओ, वह जागता नहीं ।

एक बार तो नींद में चारपाई से फर्श पर गिर गया था और फिर भी चुप पड़ा रहा था । वे दोनों समझे थे कि सिर पर चोट आ जाने से अचेत हो गया है, मगर वह सिर्फ नींद में था ।

'बेटा तो खूब सोता है, मगर बाप की नींद हराम हो गई है ।' कहते हुए, तब भी मजाक उड़ाया था उसने ।

बोली, "तुम्हारे रिसर्च-वर्क को देखते-देखते अब मेरा भी जी 'रिसर्च' को होने लगा है ।"

"किस सब्जेक्ट पर ?"

"लोग 'चैरिटी बिगेन्स फ्राम होम' कहते हैं । मैं कहूंगी, 'रिसर्च बिगेन्स फ्राम होम !' मैं 'मनुष्य की आदिम वृत्तियां और सामाजिक बंधन', याकि इससे कुछ मिलते-जुलते टॉपिक पर···"

"निगम साहब को मैंने बताया कि तुम अब कुछ अरसे तक स्कूल नहीं

आना चाहती हो। यो वजह पूछने लगे, तो मैंने कहा कि आप लोग जानते ही हैं, मगर महा खूसट आदमी है, बकता चला गया कि 'नहीं, भट्ट साहब, मुझे कुछ मालूम नहीं। कहीं बहनजी नाराज तो नहीं? सेलरी कम होने की शिकायत तो नहीं कर रही थीं?'···आखिर झख मारकर मैंने बताया तो कांग्रेच्यूलेट करने लगे और फिर अपनी गंजी खोपड़ी खुजलाने के बाद बोले कि 'मिस्टर भट्ट, मेरी एक अर्जी बहनजी के दरबार में लगा दीजिए। कहिए तो लिखकर दे दूं। बस, सिर्फ जुलाई-भर बहनजी आ जायें और चाहे क्लास ना लें—प्रिंसिपल वाले कमरे में बैठी रहें। लोगों को पता चला, वो स्कूल आना बंद कर चुकीं, तो इससे हमें नुकसान पहुंचेगा। ये एडमिशन्स का महीना है।'···यह भी कह रहे थे कि अभी तो प्राइमरी-पीरियड ही चल रहा होगा।"

"टिपीकल आदमी हैं मिस्टर निगम!···जहां तक मैं समझी हूं, औरत-खोर के रूप में वह यों ही कुछ ज्यादा बदनाम हैं। कुछ औरतें ऐसी होती हैं कि जानबूझकर खुद कांटा निगलती हैं और आदमी को इस गुमान में डाले रखती हैं कि उसने फंसा डाला। इनका वास्ता ऐसी ही औरतों से पड़ा होगा। मुझसे आज तक कभी असभ्यता का रत्ती-भर भी कोई बर्ताव नहीं किया। और हां, बात तुमने 'डेविएट' कर दी। कहां मैं रिमर्क···"

"तो तुम जाओगी जुलाई-भर को?" उसने फिर बात काट दी।

"मैं तो, मजबूरी न होती, घर बैठना कतई पसंद न करती। उद्यम कर सकने की गुंजाइश होने पर भी लोग घर में पड़े रहें, तो घर भारी होता जाता है। मगर मेढकी की तरह पेट फुलाए लोगों के बीच में घूमना···"

"अरे, इस कन्या पाठशाला में बेचारे लोग हैं कहां? सिर्फ बच्चे हैं और मास्टरनियां-दाइयां! लोगों के नाम पर सिर्फ बेचारा मैं हूं और दूसरे···"

"इतनी अक्ल तुममें होती तो मर्दों को ही मां न बना दिया होता भगवान ने? बड़ों के देखने से भी मुझे तो बच्चों का देखना ज्यादा चुभता है। घोर कुतूहल और जिज्ञासा-भाव से देखते हैं बच्चे और फिर आपस में टिप्पणी करते हैं तरह-तरह से कि 'हमारी मिस्टरजी की तो तोंद बाहर निकल आई है।' या कि 'मिस्टरजी आजकल बहुत ज्यादा माल खा रही हैं।' जाने ऐसी ही कितनी शरारत-भरी बातें। बच्चे प्रकृति से ही 'विटी' -

होते हैं। लेकिन जुलाई-भर चल सकता है। अभी सातवां लगा-भर है, मगर क्लास मैं सचमुच नहीं लूंगी।"

"क्लास तो मेरी ले लेना तुम···"

"तुम्हारी क्लास लेते-लेते ही तो यह नौबत आती है!" कहते हुए मीता उसकी पीठ से लग गई।

जुलाई बीतते ही मीता ने स्कूल जाना बन्द कर दिया, किंतु इसी बीच उसने भगततारन गर्ल्स डिग्री कालेज के लेक्चरर-पद के लिए निकली 'वांट' के सिलसिले में आवेदन भी कर दिया।

"मैं उम्मीद कर रहा हूं कि अक्तूबर-नवंबर तक अपनी 'थीसिस' पूरी कर लूंगा। जरा एक चक्कर इस बीच लमही तक का लगा आना होगा। दो-चार दिनों को बनारस रुक जाऊंगा। जीवनी-खंड अप-टु-डेट कर लेना है। नवंबर तक···"

"एक 'थीसिस' तो तुम्हारी अक्तूबर में ही 'कम्प्लीट' हो जाएगी···"

"बच्चों के बारे में तुम स्त्रियां ऐसे बातें करती हो, जैसे अकेला वही उल्लू का पट्ठा जिम्मेदार हो।"

"लेकिन सवित्तरी कहती है कि इस बार उल्लू का पट्ठा नहीं, पट्ठी आनी चाहिए···!"

मीता जोर से हंसी, तो वह सिर्फ देखता रह गया।

"सवित्तरी कहती है, इस बार लड़की होनी चाहिए···। कहती है, साथ-साथ लड़के होने से···"

"उसे बड़ी फिकर है तुम्हारी···।"

"ये तुम जानो, किसकी ज्यादा है, मगर आज अरसे-बाद जिक्र चल पड़ा है फिर उसका, तो एक बात बताऊं। हमारे मकान-मालिक ने—वह बता रही थी—उसे कहा है कि 'सावित्री, कहीं किसी का प्रेम में तो नहीं पोड़ गया रे?'···तुमने खुद गौर नहीं किया, उसमें काफी परिवर्तन आ गया है?"

"तो मैं क्या करूं?"

"खीजते क्यों हो? कहीं ऐसा न हो कि वह सचमुच किसीके प्रेम में

पड़ गई हो ?"

"नहीं, नहीं, कहो कि 'तुम्हारे प्रेम में पड़ गई है।' भली औरत हो तुम भी, भई ! समझदार औरत वो, जो दूसरों की परछाईं से भी बचाती हो, मगर तुम हो किसी न किसी बहाने उसका जिक्र निकालकर, मजा लेने लगती हो।"

'लेने कहां देते हो तुम। जमींदार पंडित होते तुम, खूब लम्बी-चौड़ी खेती-बारी होती तुम्हारी, तो मैं भी खेल खेलती होती। लोटे में की मछली उछलेगी, अपनी ही पूंछ तोड़ेगी। मगर मैं बात तुमसे यों ही नहीं कह रही थी। सवित्तरी खुद बता रही थी कि राधाभवन वाली तरफ जिन रेलवे वाले तिवारीजी के यहां काम पर जाती है दोनों बहनें—उनका लड़का उसपर डोरे डालने की कोशिश करता रहता है। बता रही थी कि कोई चिट्ठी भी लिखी थी उसने, जिसमें शायरी-वायरी भी कुछ थी।"

"तुमने अपने पढ़ने को मांग लेनी थी सवित्तरी से ! पुराने दिनों की याद ताजा हो जाती।" कह तो गया जनार्दन, मगर तुरन्त सहम गया कि कहीं इसे विनोद की जगह अपने ऊपर आरोप न समझ ले मीता।

उसका चेहरा उतर गया।

"तुम बेकार उदास हो रहे हो। मुझे बुरा नहीं मानना है। तुम तो खालिस मजाक में कह रहे हो—गुस्से और हिकारत में कह रहे होते, तो भी मैं सिर्फ सुन लेती। यह बात तुम्हें मैंने खुद बताई थी और बताकर हर तरह के अफसोस से मुक्त हो गई।" कहते हुए, उसकी सकपकाहट पर मीता धीरे से मुस्करा-भर दी, तो वह कुछ और हतप्रभ हो गया।

बोला, "मीता, कभी मेरे मुंह से कुछ अनुचित निकल भी पड़े, तो उसे तकलीफ पहुंचाने के लिए कहा गया न मानना, प्लीज !"

"पंडित हो, 'कृपया' कहते, तो ज्यादा अच्छा सुनाई पड़ता।" मीता हंस पड़ी।

थोड़ी देर दोनों चुप रहे। अन्तिम घूंट पीकर, चाय की प्याली के किंचित् जोर से रखे जाने की आवाज कमरे में भर आए सन्नाटे में साफ-साफ सुनाई दे गई।

मीता उठी और चाय की खाली प्यालियां उठाकर, रसोईघर में

आई।

"सुबह ही धोऊंगी। आलस आने लगा। कुछ तो मैं मायके से ही आलसी थी, कुछ इस सवित्तरी ने हाथ-पैरों को जंग लगा दी। लोकापवादों की फिक्र न होती, तो मैं इसे हमेशा-हमेशा को साथ रख लेती। बड़ा आराम देती मुझे।" कहती मीता छत की ओर मुंह किए अपने विस्तर पर लेट गई, तो उसका मां होना जैसे एकाएक उसकी सम्पूर्ण देह पर उदित हो आया।

"हद औरत हो तुम! कुछ सामंतों-राजाओं के किस्से तो सुने थे कि उन्हें अपनी रानियों के लिए पुरुष रखैल रखने का शौक हुआ करता था। तुम, मीता, इस प्रसंग को अब स्थगित ही करो, तो अच्छा है। शिवचरन तो कभी-कभी तुम्हारे पास आकर बैठता है, उसे कहो, जल्द से जल्द शादी कर दे उसकी। मैं देख रहा हूं, जब तक उसकी शादी नहीं हो जाएगी, तुम खुद उसे हटा नहीं पाओगी।"

"आदमी तो, खैर, तुम पंडित हो। बहुत दूर तक की सोचते हो। सोचते होगे, एक बार शादी हो जाए सवित्तरी की, तो फिर डर नहीं रहेगा? बहूजी से मिलने तो वह आया ही करेगी?"

"अब छोड़ो, भई! ये पेज तो पूरा कर लेने दो। तुम तो जाने क्यों रोज सवित्तरी-पुराण लेके बैठ जाती हो।"

"क्यों, तुम एक दिन खुद नहीं कह रहे थे कि ऐन मेरे दुर्गा-पाठ के वक्त आ पहुंचती है?"

"तुमने न किया हो, मगर मैंने इरादा किया था कि शिवचरन को कहूंगा।···मगर फिर संकोच में पड़ गया कि मैं कौन होता हूं। उसका बेटा तो यहां से कहीं चला ही गया।"

"सवित्तरी कह रही थी कि 'बाबू साहेब के समझाने का उसपर बहुत गहरा असर पड़ा है, बहूजी! रात घर आया तो चेहरा उतरा हुआ था। बहुत गुमसुम, खोया-खोया था। सुबह देखती हूं कि बिस्तर पर नहीं।' क्या कह दिया था तुमने उससे?"

"लड़का वह गैरतमंद लगता था, बुरी सोहबत में पड़ गया। मैंने यही समझाया कि 'तुम दो बहनों के बीच के भाई हो, कभी किसी लम्बे चक्कर

में फंस जाओगे, तो जिन्दगी गारत हो जाएगी। बीमार और गरीब बाप, सयानी होती जाती बहनों की कुछ फिक्र करो। खैर, इतना तो कह सकता हूं कि वह लड़का घर से निकल गया है, तो ये उसके हक में ठीक ही हुआ है। मुझसे वह कबूल कर रहा था कि साइकिलों के फ्रेम के डण्डों से अद्धा बनाने वाले गिरोह की सोहबत में भी वह आ चुका…"

"ये अद्धा क्या बला है?"

"अरे देशी पिस्तौल, और क्या। वह बताता था कि साहेब, पुलिस वाले तक खरीदते है।"

कुछ देर दोनों चुप रहे। जनार्दन ने कागज-कलम समेटकर रख दिए।

"आज दुबारा चाय नहीं पियोगे?"

"रहने दो, मीता! आज सिर्फ थोड़ी देर पढ़ूंगा, बस!"

वह उठी और रसोईघर की तरफ चल पड़ी। उसने गौर किया कि मीता के चलने में आयु के परिवर्तन को वह, इस वक्त, पहली बार महसूस कर पा रहा है। सुनील के वक्त तो वह शुरू के दिनों में ही मायके चली गई थी और फिर लगभग तीन वर्ष वहीं बीत गए।

कैसे अपनी आंखों के सामने भी जीवन अबूझ-सा बीतता जाता है। इतने दिन मीता यों ही सामने रही, मगर इसको चलते देखकर किसी गर्भिणी मृगी को देखने की सी अनुभूति इससे पहले कहां हुई।

मीता की रसोईघर से वापसी को भी वह वैसे ही देखता रहा।

उसे चाय देकर, मीता अपनी चाय लिए दूसरी चारपाई पर बैठ गई।

"बहुत दूर बैठने लगी हो मीता।" उसने सुनील को ठीक से करवट करते हुए कहा, तो मीता ने धीमे से सिर्फ इतना कह दिया, "बहुत नजदीक आने की वजह से ही।"

कहीं उस तरह का कोई संकेत नहीं था, मगर जाने उसे क्यों लगा कि इस बात से भी सवित्तरी जुड़ी हुई है।

"मीता, आज मैं तुमसे इस लड़की को लेकर, कुछ दोटूक बातें करना चाहता हूं और तम मजाक में लोगी, तो अच्छा न होगा। खास पर

वच्चालाल वाले प्रसंग के वाद मुझे लगातार यह लग रहा है कि कभी वेकार की फजीहत न उठानी पड़े। मुझे अव समझ में आ रहा है कि मेन-रोड पर पान की दुकान पर खड़ा वच्चालाल अक्सर मुझे क्यों घूर-घूरकर देखता है। हो सकता है, उसका शक कभी यकीन की हद तक जा पहुंचे? ये निचले तवके के लोग मध्यमवर्गीय लिहाज और दव्वूपन के कायल नहीं होते। यों भी, मीता, हम लोगों की छोटी-सी गृहस्थी है। तुम्हारी वापसी ने इसको शुरू किया है और अभी हमें अपने-आपको ठीक से व्यवस्थित कर लेने में ही कुछ वक्त लगेगा।"

"लगता है, तुम स्त्री को लेकर उत्पन्न होने वाले द्वन्द्वयुद्ध से डर गए हो?"

"तुम तो, मीता, फिर मजाक में ही ले रही हो वात को। तुम अपने अनन्त किस्म के अनुराग में से मुझे देखती हो, वाहर के लोग नहीं देखेंगे। अध्यापकी का पेशा ऐसी चीज है कि इसमें वदनामी की हवा सिर्फ तकलीफदेह ही नहीं, नुकसानदेह भी सिद्ध होती है। अव तुमसे क्या छिपाना, इस सवित्तरी के प्रति जाने क्यों, आकर्षण तो मैं महसूस करता हूं और इस वात को कह ले जाने की छूट तुमने दी है। मगर तुम्हारे इस संशयहीन विश्वास ने ही मुझे और ज्यादा सावधान कर दिया है कि—जनार्दन, अपने सिर पर चील की तरह लगातार मंडराती परिस्थिति से वेखवर रहना ठीक नहीं। कहीं कभी ऐसा न हो कि हम लोग वेवात की फजीहत में पड़ जाएं। अड़ोस-पड़ोस में भी सवित्तरी के यहां लगातार के वने रहने की चर्चा है। अव तो तुम्हें घर पर ही रहना है, इसलिए अव सुनील की प्रोव्लेम भी नहीं रही। कालेज में तुम्हारी नियुक्ति हो जाएगी, तव देखी जाएगी। अभी तो एकाध महीना लगेगा ही। तव तक में तुम्हारी 'डिलीवरी' के दिन भी तो नजदीक आने लगेंगे? एक वार ज्वाइन करके···"

"तुम्हारी वातें फिजूल हैं, ऐसा मैं नहीं कहूंगी, सुनील के वावू! मगर जहां ये दस-ग्यारह महीने निकल गए, दो-तीन महीने और निकल जाने दो। मैं खुद उसके व्यवहार में ऐसी वंध गई हूं कि 'सवित्तरी, अव तुम हमारे घर न आया करो।' यह कहना मुश्किल हो गया। उसके काम की कुछ ऐसी आदी हो गई हूं कि मालूम पड़ता है, मेरा सोचा हुआ जान जाती है। मैं

इधर इरादा करूंगी कि अब आज दाल नहीं, कढ़ी बननी चाहिए और पता चलता है कि 'वह खुद पूछ रही है कि बहूजी, आज कढ़ी बनायेंगी क्या ?'' गणेशी मदारी की बंदरिया है। सोंटा ठकठकाते रहो, वह नाचती रहे। बंद करो, बंद। पतीली लाओ कहूं, तो पतीली देगी और फिर मसाला-प्याज-कलछी, संडसी-चिमटा—हरेक चीज के लिए अलग से कहना होगा। सवित्तरी का ये हाल है कि नहाते वक्त भी मुझे यह चिंता नहीं करनी है कि कौन-सा कपड़ा निकला है, कौन नहीं। महीने में सिर्फ चार-पांच दिन नहीं आती है, मैं परहेज करती हूं इस बात का खयाल रखकर, और मैं परेशान होने लगती हूं। मेरा सुख जाता रहता है। शिवचरन से मेरी बातें होती हैं और अक्सर सवित्तरी को लेकर ही होती हैं। इस साल की सर्दियों में उसकी शादी कर ही लेगा, ऐसा मुझे लगता है। हालांकि एक बार कहता था कि 'बहूजी, हम तो इसके जाते ही बेआसरा हो जाएंगे। रिक्शे की गद्दी के नीचे आलू-परांठा-अचार-रोटी गनेशी कहां रख पाएगी। बेटी है, परायी अमानत है। नहीं तो यही कहते कि 'बिटिया, हमें चले जाने दे, तभी तू जाना।'''इतनी तो सचाई है, सुनील के बाबू, कि वह अद्भुत लड़की है। शिवचरन जैसे गरीब के घर तो वह प्रकृति के चमत्कार की तरह लगती है। हालांकि शास्त्रों में बिल्ली के सामने दही की हांडी करना वर्जित माना गया है, मगर तुमने उसे अभी देखा नहीं है। एक दिन मैंने उससे यहीं नहा लेने को कह दिया था। मई-जून की दोपहर में कभी। क्या कहूं—झील में की मछली हो जैसे !'''उसका सारा टसका जमींदार घर की बेटियों का सा है, मगर उसके मांजे हुए बरतनों में, उसके लगाए झाड़ू-पोंछे में, धोए-सुखाए कपड़ों में—मजाल है, कोई जरा-सा भी नुक्स निकाल ले !''

''खैर, मर्यादा तो उसमें गजब की है। तुम्हारे कहने पर उसने पांव उस दिन दबा तो दिए मेरे, मगर तुम्हारे सारे-सारे मजाकों के बाद भी मैं एकाएक उसे छू लेने का साहस नहीं कर सकता। जितना कोई औरत बित्ता-भर जबान बाहर निकालकर कह सकती है, उतना तो वह सिर्फ एक पलक गिराने में कह लेगी।''

''स्टडी' तो तुमने उसकी बड़ी 'माइन्यूट' कर रखी है ? आखिर रिसर्च

स्कॉलर हो ना ? और वो भी इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के ! अच्छा, अब मैं तुम्हें बताऊं कि वैसा मैंने शरारतन किया था और मुझे इस बात का पूरा इतमीनान था कि जिस मर्द को सवित्तरी खुद भीतर से पसंद नहीं करे, उसे स्पर्श कर लेने को आसानी से तैयार न होगी।"

"यानी तुम कहना चाहती हो कि वह मुझे भीतर से पसन्द करती है ?"

"अब कितनी बार कहलवा-कहलवा के सुनोगे, पंडित ! अब तो कलजुग आ गया, तुम पंडितों की गत बिगड़ गई। पुराना वक्त होता, तो दक्षिणा में मिल गई होती।"

"मेरे लिए तो वह सचमुच अंतर्बाधा बन गई है और वजह सिर्फ तुम हो, मीता ! दूसरी कोई भी औरत इसे खेल खेलने की चीज नहीं मानती।··· लेकिन आखिर-आखिर निस्तार इसीमें है, मीता, कि वह दूर हो जाय। समस्या इसलिए है कि तुम्हें भी इतना मोह है उससे। है तो वह निश्चित रूप से प्यारी लड़की। मैं अक्सर उसे बहन के रूप में भी देख लेने की कोशिश करता हूं। हमारे समाज की बनावट ऐसी है, मीता, कि इसमें आदमी का जीवन बनने में चाहे जितना लगे, नष्ट होने में वक्त नहीं लगता। खासतौर पर 'प्लेन्स' के शहरों की इन घनी बस्तियों में कैसा दमघोटू वातावरण रहता है ! अक्सर कितनी मामूली-सी बातों या घटनाओं को लेकर हंगामे खड़े हो जाते हैं, देखती तो हो। जिस तरह और जितनी गंदी जबान में यहां के लोग आपस में वाग्देवी की स्तुति करते हैं···"

जनार्दन, शायद, अपनी रौ में धाराप्रवाह बोलता जाता कि मीता ने बीच में ही टोक दिया, "अरे सुनील के बाबू, इतनी लम्बी तफसीलों में जाने की जरूरत क्या है। जब खुद कहते हो कि 'बहन के रूप में देखने की कोशिश भी करता हूं', तो फिर समस्या रह ही कहां गई ? आज क्या है, सोम ? अरे, परसों ही तो रक्षाबंधन पड़ रहा है—राखी बंधवा लेना सवित्तरी बहनिया से ?"

मीता का खिलखिलाना कमरे में पारदर्शी जल की तरह भरता रहा और वह एक असुविधाजनक खिन्नता में डूबा हुआ-सा बत्ती बुझाकर सुनील की बगल में सो गया।

अक्सर रात सोते वक्त, बत्ती बुझा देने के तुरन्त बाद के अंधेरे में मीता का बोलना ज्यादा मुखर हो जाता रहा है, मगर आज उसने पाया कि मीता जल्दी ही गहरी नींद में सो चुकी है।

मां बनने की दिशा में जाती हुई यह स्त्री निकट से देखते रहने पर किसी अलौकिक यात्रा में आगे बढ़ती-सी दिखाई देने लगती है। यह मद्धिम-मद्धिम खर्राटे भरना भी इसका, बस, लगभग एकाध महीने से ही शुरू हुआ है।

लाख अंतर्बाधाओं के बावजूद, यह जाने क्यों अपने को सोचने से रोक नहीं पा रहा है कि सवित्तरी जब कभी मां बनने को होगी, तब उसका रूप कैसा होगा?

मान लिया जाए कि वह शादीशुदा होती और ठीक मीता की तरह मां होने-होने को और जैसेकि मीता ने स्कूल पढ़ाने जाना छोड़ दिया है कि देखा जाना अच्छा नहीं लगता—ऐसे ही सवित्तरी भी एक दिन धीमे से मीता से कह गई होती कि 'बहूजी, अब कल से हम नहीं आवेंगी, सिर्फ गणेशी आवेगी। काम पर ऐसे में बाबूजी के सामने पड़ना अच्छा नहीं लगता हमें।'

···अचानक ही उसने अपने-आपको अंधेरे में के चोर की जैसी मनःस्थिति में महसूस किया और तेजी से करवट बदलकर, मीता की तरफ पीठ करके सो गया।

१२

आजकल मीता स्कूल नहीं जाती, इसलिए उसकी वापसी तक सुनील से बंधे रहने की जरूरत नहीं रह गई। दूसरे जो तीन घर और हैं, उनमें चूल्हा-चौका-झाड़ू-पोंछा कम से कम सुबह के वक्त का अकेली गणेशी भी निबटा लेती है और गृहिणियों का झींकना बना रहता है कि 'सवित्तरी, तेरा तो अब हवा का सा चलना हो गया। जब तेरी मर्जी हुई, आ गई। नहीं हुई, नहीं आई।'

सामान्य दिनों में न सही मगर त्योहार-उत्सव के दिनों गृहिणियां उसे पहले ही सहेज देती हैं कि 'सवित्तरी, कल तुझे भी जरूर आना है।'

श्रीमती अग्रवाल ने कल शाम ही जोर देकर कहा था, 'सवित्तरी बेटी, सुबह तुम भी जरूर आना रात को चाहे फिर न आना। रक्षाबंधन के दिन, सारे काम सुबह ही रहते हैं।'

अग्रवाल परिवार में काम करते ज्यादा वक्त नहीं हुआ, मगर जनार्दन के घर के अलावा कहीं दूसरे परिवार में जाना थोड़ा अच्छा लगता है, तो फिर यहीं। मुख्य सरोकार तो, गृहिणी से ही होता है और विद्यादेवी सिर्फ बोलने में ही 'बिटिया-बिटिया' नहीं करतीं, बल्कि व्यवहार में भी स्नेह बरतती हैं। दोनों लड़कियां भी सहेलियों के से अपनापे से बातें करती हैं, मगर समस्या की तरह अगर वहां कुछ मौजूद है तो अनुराग—अग्रवाल दम्पति का छोटा बेटा।

उम्र क्या होगी इसकी ? यही सवित्तरी के आसपास। ज्यादा से ज्यादा

बीस-इक्कीस।

सवित्तरी मीता के घर का सुबह का काम जल्दी ही निवटा आई। छोटा परिवार है और अभी अकेला सुनील। जनार्दन को राखी बांधने वहीं राजापुर वाली बुआ आएंगी और सवित्तरी इसीलिए और भी जल्दी खिसक आई है। अब शाम के वक्त जाएगी, हालांकि मीता बहुत कहती रही थी कि इस वक्त यहीं खा लेना।

खाने का आग्रह तो श्रीमती विद्यादेवी की ओर से भी है और दोनों लड़कियां जिद करेंगी। गणेशी दूसरी दो जगहों पर जाएगी।

गंगवा घर पर रहता था तो कभी इतना ध्यान रहता नहीं था। गरीबों के घर त्योहार भी आता है, तो दाढ़ निकाले आता है। किसी मेले-ठेले में भले ही निकल पड़े, घर में त्योहार की चहल-पहल जैसी चीज कहां। आज रक्षा-बंधन है, मगर शिवचरन यह कहता निकल गया है कि 'तुम दोनों तो त्योहारी में ही खा लोगी, सवित्तरी ! हम कहीं टेशन की तरफ कुछ खा लेंगे।'

आज बार-बार गंगवा की याद आ रही है। आंखों से दूर होकर, ज्यादा नजदीक हो गया है। लगने को हमेशा डर लगा रहता था कि लोफर-उचक्कों की सोहबत में जाने कब जेल चला जाए या छुरेबाजी का आखेट हो जाए, मगर अब घर वीराना-सा लगने लगा।

दोनों बहनें एक दिन पहले से ही कैसी तैयारी में लगी पड़ी थीं कि कल रक्षाबंधन है। देख-देखकर मन में हूक उठती थी कि जाने गंगवा ससुर कहां होगा और किस हालत में !

अनुराग को रंगीन साइकिल पर राधाभवन से सब्जीमण्डी की तरफ निकलता देखकर, फिर तेजी से गंगा की याद आई है और शायद, उसने अनुराग को टकटकी लगाकर देखा है, इसलिए तो उसे आंख मारने का अवसर मिल गया।

कोई दूसरा होता, सवित्तरी आग हो चुकी होती। इस बनिया छोरे को देखकर, उसे जाने क्यों गुस्सा नहीं आता।

चुका।

उम्र क्या होगी इसकी, यही बीस-इक्कीस। लगभग हमउम्र है और सूरत-सीरत से कुल मिलाकर बबुआ लगता है। शातिर किस्म के लड़कों की जगह, स्त्रियों को लेकर इसकी आंखों में ही नहीं, बल्कि चेहरे पर की त्वचा पर तक कुछ-कुछ बेवकूफी का-सा भाव तैर आता है और अपने काफी मोटे शीशे तथा सुनहरी फ्रेम वाले चश्मे में यह बाज वक्त सचमुच उल्लू का पट्ठा नजर आने लगता है।

ऐसा यह कई बार पहले भी कर चुका है। बिंदादेवी या स्वाति और चित्रा के कहने पर इसे कुछ देने, या किसी और काम से, वह जब भी इसके निकट गई है, दो-चार क्षण को भी आंखें मिलीं नहीं इससे कि इसने तुरत झपकी ली है।

कांइयापन इसमें कतई नहीं होता और सवित्तरी के पेट में हंसी का गोला-सा घुमड़ता है, मगर वह बिंदादेवी या स्वाति-चित्रा पर अपना मनोभाव प्रकट नहीं होने देती। अलबत्ता इससे एक बार धीमे से जरूर कहा था कि 'क्यों भैयाजी, आंख में फूस तो नहीं पड़ गई ?'

इसने खिसियाकर, अपना मुंह गोलगोल-सा कर लिया था और मुंह फेरकर, सीटी में कोई फिल्मी धुन बजाने लगा था। यों अक्सर यह 'माउथ-आरगन' को लालीपाप की तरह मुंह में लिए रहता है और स्कूल जाते वक्त यदि सवित्तरी पहुंचती है तो सैण्डो बनियान और अंडरवियर में होकर कपड़े बदलता है।

अग्रवाल ऐसे नहीं हैं। सवित्तरी के प्रति उनमें बड़े बुजुर्गों की-सी ही मर्यादा और स्नेह से भरा व्यवहार है, मगर वे इसकी तरह अनुभवों के कोरे नहीं लगते। इसे देखकर तो, बस, पूंछ उठाकर, उछलते-कूदते बछड़े को देखने की-सी अनुभूति होती है।

जनार्दन के आगे खुलकर बोलते झिझक होती है, हालांकि ऐसे कई अवसर आए हैं, जब वह और जनार्दन घर पर एकांत में रहे हैं और गीता सुनील को लिए, कहीं पड़ोस में गई रही है।...और दोनों में, निहायत औपचारिक तौर पर ही सही, सुख-दुःख की बातें भी हुई हैं जैसेकि जनार्दन का एक दिन का यह पूछना उसे अभी तक याद है कि 'क्यों सवित्तरी, जब तुम्हारी मां

मरी, तब तुम्हारी उम्र कितनी रही होगी ?'

सवित्तरी का भी अभी जिसे दुनिया देख चुकना कहते हैं, इससे गुजरना हुआ कहां है, मगर इतना वह समझ लेती है कि अक्सर आदमी को कुछ ऐसी बातें करनी पड़ती हैं, जो उसके मंतव्य को ढांके रहें।

अनुराग से बोलते ऐसा नहीं होता, बल्कि अपने किंचित् अधिक अनुभवी होने का-सा इत्मीनान महसूस होता है, अन्यथा आंख में फूस पड़े होने की बात ही वह कहां कह पाती ?

शुरू-शुरू में तो उसे यह भी भ्रम होता था कि कहीं ऐसा न हो कि यह पलक झिपते रहना उसकी शारीरिक वृत्ति ही हो, शरारत न करता हो। बाद में गौर से देखने पर पता चला कि सिर्फ उसीके सामने ऐसी हरकत करता है और यह हरकत करते वक्त उसमें अपने अधिकृत होने का-सा जो भाव होता है, इसीसे यह लगभग उल्लू का पट्ठा लगता है और हंसने को जी होता है।

हालांकि गंगा की याद आ जाने से भीतर कहीं गहरे में उदासी भर गई-सी प्रतीत होती है, जैसे गोखुर-भर जगह में वर्षा का जल भर आया हो, मगर जाने क्यों अचानक ही उसने तय किया कि अगर इसने कुछ नादानी-भरी हरकत की, तो बख्शेगी नहीं।

फिल्में देखने का ज्यादा शौक है या नहीं, यह दोटूक कहने की गुंजाइश नहीं है। कई बार फिल्में देखते हुए ऐसा लगता रहा है कि किसी ऐसी ही दुनिया में उसे भी होना चाहिए था, जहां जीवन परिंदों की-सी उड़ान के साथ घटित होता है। जाने किस फिल्म में उसने कभी देखा था कि एक गरीब मजदूर की बेटी की शादी मिल-मालिक के बेटे से हो गई थी और इस फिल्म का उसपर बहुत दिनों तक असर रहा था। गरीब घर की बेटी होने के बावजूद कहीं बहुत अच्छी जगह अपने मनचाहे किस्म के आदमी से शादी हो सकने की सम्भावना—यह सिर्फ भाग्य अथवा कल्पना की ही चीज हो सकती थी और इस तरह के कल्पना-लोकों का साक्षात्कार अपने आसपास के यथार्थ में नहीं, सिर्फ फिल्मों में ही होता था। इस बनियाबच्चा को देखकर अचानक जो फिल्मों की याद हो आई है, तो सिर्फ इसीलिए कि यह हर वक्त फिल्मी गाने गुनगुनाते, सीटी या माउथ ऑरगन में धुनें बजाता रहता है।

सवित्तरी ने पहले ही अनुमान लगा लिया कि यह वग़ल में से कबूतर की तरह उड़ता-सा गुजरेगा और थोड़ी दूर आगे निकलकर, फिर पीछे लौटेगा और अन्ततः लगभग परिक्रमा कर चुकने की-सी तृप्ति में होता हुआ, तेजी से आगे निकल जाएगा।

सवित्तरी भी तो खुद ही कैसी होती गई है इन दो-तीन वर्षों में। वच्चालाल हो, जनार्दन हो या और कोई—इस तरह के सारे लोग जो भी उसकी परिधि में आते हैं, नदी-किनारे आए हुए-से लगते हैं। एक तरफ असमय बूढ़े और कमजोर हो चुके वाप, निर्वासन पर जा चुका भाई और अभावों के वीच अपने वचपन के क्षय से गुजरकर गांठ होती जाती-सी छोटी वहन का विषाद है, जो उथले जलवाले तालाव के सतह पर की काई की तरह हर समय उसके भीतर के मनोलोक को ढांके रहता है।···और दूसरी तरफ, अपने एक सौंदर्य और तारुण्य में दिपती स्त्री होते जाने का मायावी-पन, जो घर और परिस्थितियों के कंगलेपन के वीच भी झील में की मछली चना डालता है।

वह सचमुच कवूतर के-से उड़ने की प्रतीति देता हुआ करीव से गुजरा। फिर वही परिचित धुन सीटी पर वजाते हुए—'अंखिया मिलाके, जिया भरमा के···'

मन हुआ कि आवाज देकर पुकार ले कि 'भैया, चले तुम खुद ही जा रहे हो, हम तो यहीं खड़ी हैं।'···मगर सिर पर आंचल का छोर करती आगे वढ़ गई।

वह साइकिल को धनुषाकार घुमाता, ठीक मुंह-सामने आ गया, "हम सव्जी लेने जा रहे हैं, सवित्तरी!"

"हम सोचे, ववुआ, सनीमा देखे खातिर चले हैं···"

सवित्तरी ने अपनी वड़ी-वड़ी आंखों को उसके मुखमण्डल पर इस तरह किया कि वह झपकी लेना भूल गया। थोड़ी देर सकपकाए रहने के वाद वोला, 'हमको ववुवा-ववुवा न कहा करो, सवित्तरी!"

सवित्तरी ने एक वार दूर आगे तक देखा, कहीं छत पर से तिवारिन या कोई और इधर न देख रहा हो।

"गलती हो गई, भैया जी !" कहते हुए, सवित्तरी शरारत के साथ मुस्कराई, तो पहले वह कुछ हतप्रभ हुआ, मगर तुरन्त बाद ही वह नितान्त अप्रत्याशित तौर पर साइकिल पर आगे को झुका और 'यू आर माइन, गुड आयम योर डालिंग !' कहता, सवित्तरी के बायें गाल पर चुटकी काटता, तेजी से सब्जी मण्डी की तरफ निकल गया।

एक क्षण में जो बात बिजली की तरह सवित्तरी के मन में कौंधी, वह यह कि कहीं इस तरफ से भट्ट मास्टर साहब न गुजरे रहे हों ! या फिर बनवारी-लाल !

पहले चारों तरफ देखकर अपने को आश्वस्त कर लिया सवित्तरी ने, फिर कहीं अपने मुंह पर तोते के चोंच भर लेने के-से दर्द से आहत हुई। और लगा कि नहीं, इस छोरे को बढ़ावा देना ठीक नहीं। कहीं अपनी नादानी से दोनों को फजीहत में न डाल ले।

उसका सोचना मन पर हावी होता गया और उसके कदम और रफ्तार अपने-आप तेज हो गई। घर पहुंच जाने पर सवित्तरी ने पूरी तरह अपने-आप-को काम में खपा दिया।

बीच में जाने कब विद्यादेवी ने उसके माथे पर हाथ फेरा—'[illegible] घूमना-फिरना, काम करना—सब पुराने वर्कों के [illegible] है सवित्तरी !'

लोगों के इसी तरह के कहने को सुनती-सुनती ही सवित्तरी भी अपनी जमीन पर से ऊपर उठती गई है। जिन घरों में काम पर जाती है और अपना घर—इन दोनों के बीच के फासले में कहीं अपने होने की [illegible] बनी रहती है और वह खुद नहीं जानती कि इस कदर [illegible] है।

अब कहां वह इस वक्त विद्यादेवी के साथ बैठी [illegible] कहां यह मन में टीस कि काश, किसी ऐसे ही घर की [illegible] उज्जर कपड़े अग्रवाल साहब पहनते हैं, इनमें शिवचरन [illegible] वाले !' कहकर पुकारने की हिम्मत कौन करता ? और कहां [illegible] चूल्हा-चौका करती उसकी महतारी और कहां से अपनी [illegible] ज्यादा गदराए बदन और संतोष-भरे चेहरे वाली विद्यादेवी !

बड़े, चमचमाते कांसे के थाल में राखियां-रोली-अक्षत-फूल और बूंदी के लड्डू सजाए स्वाति-चित्रा अनुराग को राखी बांधने आगे बढ़ीं, तो अत्यन्त विनय के साथ एकाएक ही सवित्तरी ने निहायत धीमे स्वर में कह डाला, "अम्माजी, हम भी बांध लें भैयाजी को राखी?"

विदादेवी ने लगभग चौंकते हुए उसे घूरा लेकिन अगले ही क्षण उनके होंठों पर हल्की-सी स्नेह-भरी मुस्कराहट आ गई, "अरे क्यों नहीं। तू बता रही थी कि गंगा कहीं बाहर चला गया? अकेले भाई का आज घर में न होना सभी बहनों को बुरा लगता है। बड़ा श्रीराम दिल्ली में है, सो दोनों बहनें याद कर रही थीं कि लिफाफे में भरकर भेजना एक बात है, भैया की कलाई अपने हाथों में लेते हुए राखी बांधने का सुख इसमें कहां।... स्वाती, तुम लोगों के बांधने के बाद ये सवित्तरी बिटिया भी बांधेगी राखी मुन्ना को। ये तो भावना का त्योहार है। इसमें राजा-रंक सब एक हैं। रानी कर्मवती ने तो मुसलमान राजा को राखी भेजी थी..."

विदादेवी बोलने पर आती है, तो भव्य होती चली जाती हैं।

"जा, हाथ धो ले। अभी इतनी लोइयां बहुत हैं।" कहते हुए विदादेवी ने उसे अपने पास से मुक्त कर दिया, तो वह बड़े जतन से सिर पर आंचल करती वाशबेसिन की तरफ निकल गई।

अग्रवाल साहब रसोईघर से लगे कमरे में ही आरामकुर्सी पर पसरे कोई अखबार पढ़ रहे थे।

आरती करने के बाद स्वाति और चित्रा राखी बांधने लगीं, तो उसने आवाज को बाप के कानों तक पहुंच जाने से रोके रखने की सावधानी में लगभग फुसफुसाकर कहा, "हमे नहीं बंधवानी है इस महरिन के हाथों से राखी!"

उसके कहने में निहित खीझ को लक्ष्य करते हुए, दोनों बहनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा, और कुछ कहने की जगह, स्वाति ने बूंदी का लड्डू उसके कह लेने के बाद भी अधखुले-से रह गए मुंह में ठूंस दिया और फिर दोनों बहनें एकसाथ जोर से खिलखिला उठीं।

"क्यों, भई, क्या बात है? क्यों ठहाके लगा रहो हो दोनों बहनें?" अग्रवाल साहब की भारी आवाज कमरे में गूंजी, तो उसका अस्तित्व अपने-

आपमें दबता चला गया।

सवित्तरी धोती के छोर से हाथ पोंछती, माथे पर ठीक से आंचल करती, देवकन्या होने के से आभिजात्य को आंखों में भरे उसके करीब पहुंच गई, तो उसने अपने-आपको एक तरह की हतप्रभता में पाया और दुबारा यह कहने का साहस नहीं जुटा पाया कि सवित्तरी से राखी नहीं बंधवाएगा।

सवित्तरी ने देखा, वह कुछ बदहवास और रुआंसा-सा हो आया है और यह पहला अवसर है कि उससे आंखें नहीं मिला पा रहा है, जबकि इससे पहले वह इस तलाश में चौकन्ना दिखता था कि कब वह उसकी ओर देखे।

सवित्तरी ने उसकी कलाई को लगभग घनिष्ठता के भाव से अपने हाथों से स्पर्श किया और राखी को किंचित् कसकर बांधा। यह देखकर उसे हंसी फूटने को हुई कि उसका चेहरा काफी कड़ुवा हो आया है। वह बहनों से घिरे होने और पिता की उपस्थिति के बीच निरुपाय हो चुका-सा दिख रहा था और स्वाति के कहने पर सवित्तरी ने मोतीचूर का लड्डू उसके मुंह की तरफ बढ़ाया, तो उसने लगभग झपट्टा मारकर अपने हाथ में ले लिया और उसे स्वाति के घूरकर देखने तक मुट्ठी में भींचे रहा।

अखबार एक तरफ रखते हुए, अग्रवाल साहब ने विनोद-भरी शरारत के साथ 'ठीक किया, सवित्तरी बेटी, जो बनिया के बछड़े को रस्सी से बांध दिया!' कहते हुए जोर का ठहाका लगाया तो विद्यादेवी से लेकर दोनों बहनों तक के चेहरों पर जिस तरह चमक कौंध गई—सवित्तरी ने पहली बार महसूस किया कि बनियाछोरे के उसके प्रति अनुराग को शायद, ये सभी लोग भी महसूस करते रहे हैं।

दूसरे दिन वह लगभग दस बजे उन लोगों के यहां पहुंची तो पाया कि बैठक का दरवाजा तो खुला है, मगर घर में खालीपन और सन्नाटा भरा है। ऐसा कभी होता नहीं है कि इस घर का बोलना बैठक के दरवाजे तक पहुंच जाने पर भी कानों तक न आए। खास तौर पर दोपहर से पहले-पहले, या दोपहर के बाद।

सवित्तरी अभी घर को टोहने में ही थी कि वह बैठक से लगे कमरे में से लगभग एकाएक प्रकट हुआ।

सवित्तरी ने महसूस किया कि जाने क्यों आज वह कल की तरह शरारत अथवा मुग्धता की चित्तवृत्ति में उसकी तरफ देख नहीं पा रही है। हालांकि उसका चेहरा पूरी तरह नहीं देखा, मगर अनुमान लगाया कि कुछ खिसियाया जरूर होगा बनियाबच्चा !

सवित्तरी को यह कल्पना करते कुछ रोमांच-सा अनुभव हुआ कि शायद इस बनियाबच्चे ने उसकी बांधी राखी को फुर्सत और एकांत पाते ही नोच फेंका होगा !

उसे लगा कि यों द्विविधा में पड़ी रह जाना ठीक नहीं। परिवार के लोग जहां भी गए होंगे, यह खुद ही बता देगा। वह चुपके से बाहर बरामदे के कोने में रखा फूलझाड़ू उठा लाई और बैठक में आर-पार तक बिछे बड़े कालीन को बुहारना शुरू कर दिया।

सवित्तरी ने जैसे अपनी आंखों से नहीं, बल्कि पीठ पर की त्वचा से देखा कि वह उसी तरह खामोशी को अपने इर्द-गिर्द लपेटता-सा, दुबारा अपने कमरे में गया और एक बड़ी-सी पत्रिका हाथों में लिए, बैठक के बीच में पड़ी छोटी-सी मेज के सामने सोफे पर पसर गया। सवित्तरी ने तय किया कि झाड़ू देते वक्त इससे हटने को या पांव थोड़ा ऊपर उठा लेने को कहना ठीक नहीं। वह बाहर-बाहर खामोशी में लिपटा, मगर भीतर कड़ुवाहट और क्रोध में भरा लग रहा था। हालांकि अभी तक भी सवित्तरी ने उसके चेहरे को गौर से नहीं देखा था, मगर जाने क्यों वह ऐसा महसूस कर रही थी कि यह अपने खिसियाएपन की वजह से ही चुप्पा बना बैठा है और फिल्मी धुनें इसके होंटों पर से लगातार गायब हैं।

आखिर बहुत धीमे शब्दों में, और बहुत सलीके से, उसने पूछ लिया— "भैयाजी, अम्मां लोग कहीं गए हैं क्या ? खाना पूरा बना-बुनू कर गई हैं, या कुछ तैयार करने को कह गई हैं ?"

उसने अपना सिर ऊपर नहीं उठाया, लेकिन सवित्तरी के लिए लगभग अप्रत्याशित बात कहते हुए, तेजी से पत्रिका के पन्ने पलटने लगा, "हमारे लिए एक कप चाय बनाकर दे सकती हो तुम ?"

सवित्तरी ने मान लिया कि घर के लोगों के बारे में यह चाय पा जाने पर ही बताएगा। वह भीतर गई और गैस के चूल्हे पर चाय का पानी चढ़ा

देने के वाद, उसके उबलते तक में इधर-उधर बिखरे बरतनों तथा सामान को करीने से लगाती रही।

चाय की प्याली मेज पर रखने को वह झुकी तो देखा कि मेज पर जो पत्रिका वह फैलाए हुए है, उसमें औरतों की नंगी रंगीन तस्वीरें छपी हैं।

वह सन्नाकर रह गई और लगा कि उसे यहां से जल्दी से निकल चलना चाहिए।

"मम्मी लोग लुकरगंज चले गए हैं—अंकल के यहां। वहीं खाना खाएंगे।"

उसके मुह से निकलने को हुआ कि 'भैयाजी, आप नही गए हैं, तो क्या आपका खाना बना देने को हमें कह गई हैं, अम्माजी ?' मगर उसने अपने को रोक लिया कि कहीं सचमुच इसने खाना बनाने को कह दिया तो उसे रुकना पड़ जाएगा और साफ है कि यह राखी के धागों से उस अर्थ में नहीं बंधा है, जिसकी उसने और घर के लोगों ने अपेक्षा की थी—बछड़े के अर्थ में भले ही बंधा हो।

सवित्तरी ने तय किया कि 'अच्छा, भैयाजी से कह दें कि दुबारा शाम के वक्त आवेंगी हम।' कहती हुई, एकबारगी बाहर बरामदे में निकल चले और फिर वहां से तेज कदमों से फाटक के बाहर। सड़क पर पहुंचने के बाद यह पीछा नहीं करेगा।

उसने इरादा किया कि चाय की जूठी प्याली-तश्तरी को धोकर रख जाने की प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं और नीचे सरक आई धोती को माथे पर करती, फूलझाड़ू हाथ में लिए वह बरामदे की दिशा में इस तरह बढ़ी जैसे झाड़ू बाहर बरामदे के कोने में रखकर, तुरन्त वापस बैठक में आना हो।...मगर उसकी सारी सावधानी और मानसिक प्रतिक्रियाओं को वह जैसे अत्यन्त पैनी नजर से देख रहा हो। उसने जिराफ की-सी त्वचा में हाथ को आगे बढ़ाते हुए सवित्तरी की कलाई को काफी कसकर थाम लिया, "तू क्या समझती है लौंडिया, कि राखी बाध देने से तू मेरी सचमुच की बहनिया बन गई है ?"

सवित्तरी पहले तो सहम उठी, लेकिन फिर तमककर उसकी तरफ

देखा। हालांकि वह अपने तईं पूरी आक्रामक मुद्रा बनाए था, मगर चेहरे पर उसके कुछ ऐसी बदहवासी का भाव था कि सवित्तरी को लगा कि कहीं अपने खुले हाथ से उसने कसकर झापड़ मार दिया तो यह रो पड़ेगा।

अचानक ही सवित्तरी ने अपनी कलाई छुड़ाने के लिए जोर से हाथ झटका, तो वह सवित्तरी और अपने बीच की मेज से टकराया और चाय-प्याली-तश्तरी के साथ ही उसकी आंखों पर का चश्मा भी झटके से नीचे जा गिरा।

उसकी छाती वाला हिस्सा शायद मेज के किनारे से टकरा गया था। उसके चेहरे पर दर्द का खिचाव उभ आया था। इसीमें उसने किसी तरह सिर उठाकर सवित्तरी की ओर देखा, तो चश्मा न होने से सिर्फ एक धुंधलका-सा महसूस करके रह गया। तभी सवित्तरी ने कड़ककर कहा, "दूंगी एक झापड़ तो सारी गुण्डागीरी भूल जाओगे। आने दो आज अम्मा-बाबूजी को घ !"

वह चीते की-सी फुर्ती से अपने-आपको समेटता-सा नीचे झुका और सवित्तरी के पांव पकड़ लिए, "सवित्तरी, तुम महरिन होकर मालिक के बेटे को पीटोगी ?"

वह इतने बेतुके तरीके से रो रहा था कि सवित्तरी को पिल्ले के किकि-के से लिजलिजेपन की अनुभूति होने लगी। पहले तो उसने अपने पांव छुड़ाए और फिर उसे सोफे पर सीधे बिठा दिया, "अब बहुत नौटंकी ना करो, बबुवा ! कोई आ गया तो फजीहत हो जाएगी। यों तो बहुत हीरो बनते हो, मगर एक ही झटके में पीं-पीं करने लगे !"

सिर के लम्बे बालों के माथे पर बिखर आने और चश्मा न होने से आंखें मिचमिचाने के कारण अब वह और भी अजूबा लग रहा था। सवित्तरी ने ढूंढ़कर, चश्मा उसकी आंखों पर लगा दिया और उसके माथे पर के बालों को हलके झटके से पीछे की तरफ करते हुए कहा, "बहुत दिलीपकुमार बनते हो। कभी किसी अनवरसिटी वाली के हाथों पिटाई हो गई तो सड़क पर रोते फिरोगे। चलो, अपने कमरे में जाके बाल संवारो और पढ़ाई करने बैठो। ये क्या नंगी औरतों की तस्वीरें लिए बैठे रहते

हो। दो-दो जवान बहनें सिर पर हैं, और तुम्हें शरम नहीं!"

अपनी बात खत्म करते हुए, सवित्तरी ने नीचे कालीन पर गिरी पत्रिका को उठाकर चिंदी-चिंदी करके कूड़ेदान में डाल दिया और प्याली-तश्तरी उठाकर, वाशबेसिन की तरफ निकल गई। मेज पर पोंछा लगा देने के बाद वह बाहर निकली और कूड़ेदान को फाटक से बाहर, सड़क किनारे की नाली में उलट आई।

बैठक में लौट आई, तब कहीं ध्यान आया कि इन सारे झमेले में खुद काफी अस्त-व्यस्त हो गई है। संयोग की बात कि आज बिना ब्रेसरी पहने ही चली आई।

वह उठकर सचमुच सीधे अपने कमरे में चला गया था।

अब सवित्तरी ने अनुभव किया कि इस बीच तेजी से जो कुछ घटित हो गया, इसे वह खुद ठीक-ठीक नहीं समझ पा रही है कि यही होना चाहिए था या नहीं। हालांकि उसने अपनी बदहवासी में ही कहा था मगर तय है कि उसने यह कल्पना नहीं की होगी कि महरिन की औकात के बाहर की कोई चीज कहने जा रहा है।

खुसुर-पुसुर या मजाक में ही नहीं, अक्सर यह सुनने में आया है कि वह शायद शिवचरन से नहीं। तो क्या वह खुद अपनी मां की नियति में पहुंचने के करीब होती जा रही है?

वह सिर्फ बौड़मपना बरतके, चुपचाप अपने कमरे में जा बैठा है, तो यह एकाएक याद आ रहा है कि ऐसा कतई नहीं है कि किसीका अपने निकट आना उसे बुरा, तकलीफदेह, या अजूबा लगता हो। जब-जब लोकभय, अंतर्बोध अथवा परिस्थितियों के चलते वह निषेध बरतती है, अपने स्त्री होने को ज्यादा तीव्रता से महसूस करने की अनुभूति होती है।

मां बताती थी कि उसकी शादी सिर्फ ग्यारह वर्ष की उम्र में हो गई थी। सवित्तरी बीस की होने को आ गई और उसका उगना गमले में पेड़ के पौदे का उगना होता जाता है। कम उम्र में ही उसकी भी शादी हो गई होती, तो दुख-सुख जो होते होते, यह अपनी ही आंखों को गड़ने लगने की विडंबना न होती।

झाड़-पोंछा निबटा लेने तक में वह सारा प्रसंग धूल की तरह बैठ गया।

उसे खुद लगा कि वनिया छोरे के रुआंसा हो जाने ने उसके गुस्से को विखरा दिया है। अव हंसी आने को हो रही है कि जव इतने कमजोर चित्त का है तो अभी से औरतों की तलाश में क्यों हो गया है ?

अव वह वापस लौट जाने की वात सोच रही थी और 'हम जा रहे हैं' कहते हुए निकल जाना चाहती थी, मगर कठोरता वरतना उससे हो नहीं पाता है। गुस्से में जो हो जाए, सामान्यतया किसीका जी दुखाना, उसे खुद अपने विपरीत जाना लगता है। वह महसूस करती है कि जो कुछ वह है, सिर्फ अपनी तारुण्य-भरी काठी-मात्र से नहीं है, वल्कि अपने अंतस में वादलों की तरह छाए रहने वाले इस स्त्री-तत्त्व के कारण भी है, जो उसे तमाम प्रतिकूल स्थितियों में भी आर्द्रता में किए रहती है।

वह उसके कमरे तक चली गई। वह आंखों पर तौलिया डाले, चारपाई पर पसरा पड़ा था। सवित्तरी के आने की आहट उसे लग गई, इससे साफ था कि सवित्तरी के साथ घटित हुआ प्रसंग अभी उसपर से उतरा नहीं है।

उसने तौलिया हटाकर देखा, अनुराग के चेहरे पर परास्तता का भाव था।

सवित्तरी एक हाथ से पर्दे को पकड़े कुछ क्षण चुपचाप खड़ी रही और फिर पूछा, "भैयाजी, आपके लिए खाना वनाना होगा ? अम्माजी लोग कुछ कह गईं या नहीं ?"

सवित्तरी प्रतीक्षा में थी कि वह कुछ कहे, तो इस पीठ पर लदी हुई-सी स्थिति से मुक्त हो। खाना वनाना हो, तो उसमें जी लगाए, अन्यथा वापस लौट चले।...मगर उसने कोई उत्तर दिया नहीं। कुछ क्षणों तक एकटक सवित्तरी की ओर देखता रहा, फिर धीमे से होंठ कांपे और जव तक में आंखों से आंसू वहकर वाहर तक आते—तेजी से तौलिया अपने मुंह पर कर लिया।

सवित्तरी को लगा, उसके पांव दलदल में हो गए हैं। थोड़ी देर के वाद वह मुड़ी और रसोईघर की तरफ चली आई।

जव तक में सवित्तरी ने आलू-गोभी की सब्जी वनाई और दो फुलके

सेंककर, थाली में खाना लगाया—वह नींद में हो चुका था। सवित्तरी करीब गई, तो देखा, तौलिया हट जाने से मुंह खुला पड़ा है और अब, इस वक्त, उसके चेहरे पर कुछ देर पहले की-सी आक्रामकता कहीं दिखती नहीं। सवित्तरी की कल्पना में वह सारा पूर्व-दृश्य उभर आया जब वह सवित्तरी पर एक पुरुष की तरह हावी होने की कोशिश में आक्रामक और असंतुलित लग रहा था। उसके चेहरे और आंखों में वन्य पशु की सी जो कौंध उस वक्त थी, अब गायब थी। अब वह कुछ निरीह लग रहा था।

सवित्तरी का 'भैयाजी, खाना खा लें।' कहना उसके चेहरे की त्वचा पर मक्खी के बैठने की तरह घटित हुआ और उसने अचकचाकर आंखें खोल दी। पछतावे और हताशा में उसकी आंखें निहायत दीनता-भरी लग रही थीं और उसने चारपाई पर पड़े-पड़े ही, धीमे से सवित्तरी के हाथों को अपने हाथों में ले लिया, तो सहसा हटाते नहीं बन पड़ा। सवित्तरी से वह सहारा लेता हुआ-सा उठा और वाशबेसिन में हाथ-मुंह धोने के बाद, सीधे खाने की मेज पर पहुंच गया।

सवित्तरी ने थाली सामने रखी और दूर टंगे तौलिये को उसके हाथों में देती बोली, "भैयाजी, मुंह तो पोंछ लो…"

१३

अलोपीवाग में राजरानी के फ्लैट पर वह आज लगभग दस-ग्यारह दिनों के वाद पहुंचा था। राजरानी सवसे ऊपर, तीसरी मंजिल पर रहती है और घर की वनावट कुछ ऐसी है कि नीचे की मंजिलों से कोई आपसी सरोकार नहीं।

सिर्फ सवा छः वजे थे, मगर सर्दियों में छोटे पड़ते दिन के कारण गली में अच्छा-खासा अंधेरा हो गया था। साइकिल में ताला लगाकर, मकान के भीतरी गलियारे में खड़ी करके, वह ऊपर की मंजिल के लिए सीढ़ियां चढ़ने लगा। सीढ़ियों पर भी अंधेरा था।...और, शायद, इसीलिए राजरानी के फ्लैट के वरामदे में भरे अंधेरे के पार का दृश्य उसे साफ-साफ दिख गया।

फ्लैट का मुख्य दरवाजा वंद था, वरामदे की वत्ती जली न थी। वैठक वाले कमरे में भी वहुत तेज रोशनी नहीं थी, मगर अंधेरे में चलकर आने के कारण भटनागर के हाथ में थमा कांच का गिलास और उसमें लगभग आखिरी घूंट-भर को रह गई शराव भी उसे साफ-साफ दिख गई।

राजरानी सामने वाले सोफे पर पौराणिक नायिकाओं की-सी अलस मुद्रा में अधलेटी पसरी थी।

उसे अचानक ही याद आया कि आज सुवह ही तो निगम साहव कह रहे थे कि अलोपीवाग में 'मंजुश्री कन्या मंदिर' खोलने की योजना वना रहे हैं।

मंजुश्री राजरानी की दिवंगत वेटी का नाम था और राजरानी ने

निगम साहब को ही नहीं, खुद उसे भी बताया था कि वह निगम साहब से ही हुई थी और अब यह पप्पू है। इसी जनार्दन को यहां, अलीपीबाग आना होता है।

मैं मैं
मे

भीतर के परिदृश्य से कुछ चकित और हतप्रभ हुआ-स उतरने को हुआ ही था कि पहले खट् से बरामदे की, औ लगी सीढ़ियों पर की बत्ती जल उठी।

"अरे, आप हैं मास्साब ?" कहती राजरानी उसके बिल्कुल सामने पहुंच गई, "मैं जो सोचूं, सीढ़ियों पर से ऊपर उठती आवाज एकाएक खामोश क्यों हो गई। पप्पूराम तो अभी खेलने से नहीं लौटे हैं, जाने कब लौटें।... मगर आप भीतर आइए ना ? एक प्याली चाय पीते जाइए। कल निगम साहब बता रहे थे कि आप बहू को ले आए और पिता भी बनने वाले हैं, मगर मिठाई का डिब्बा तो आपके हाथों में कभी देखा नहीं।"

राजरानी ऐसे हंसी जैसे बरामदे में खड़े किसी नौसिखुआ चोर पर हंस रही हो।

वह अजब मानसिक संकट की स्थिति में फंस गया। किसी तरह बोला, "ऐसा है, जब पप्पू महाशय घर पर नहीं हैं...बेकार में आपको 'डिस्टर्बेन्स' होगी।"

"अरे, भई, यही तो मैं आपको बताना चाहती हूं कि 'डिस्टर्ब' होने की कोई बात नहीं।" कहते हुए, राजरानी ने कुण्डा गिराकर, दरवाजा पूरा खोल दिया, "आइए, आइए !" कहने में मुंह, शायद, कुछ ज्यादा खुला और जनार्दन को लगा, शायद, राजरानी ने भी कुछ ले रखी है। उसके कमरे में पांव रखते ही, कोच पर लगभग पसरे पड़े भटनागर की त्वचा पर लगभग वैसी ही प्रतिक्रिया हुई, जैसी मैना के पीठ पर बैठते ही तालाब में पसरी भैंस की खाल पर होती है।

भटनागर के मुंह में अब इस वक्त पान का बीड़ा भरा था, इसीलिए 'नमस्कार' का उत्तर उसने सिर्फ सिर हिलाकर दिया। राजरानी उसे भटनागर साहब के सामने छोड़कर, भीतर चली गई। लगभग पांच-सात मिनट बाद चाय-नमकीन लिए लौटी, तब तक में जनार्दन को लगा कि वह भटनागर साहब से युद्ध करते-करते पूरी तरह थक चुका है।

इस पूरे अंतराल में भटनागर पान को अपने मुख-मंडल में रचाते हुए, सिर्फ उसकी ओर देखते रहे थे। उनका देखना न अजनबी को घूरने जैसा था, न परिचित के सामने होने जैसा। जनार्दन को महसूस होता रहा कि जैसे वह 'सर्चलाइट' की रोशनी में घिरा है और भटनागर साहब की चुप्पी बाज की तरह उसके मनोजगह में झपट्टे मार रही है। यह शख्स दूसरों के अस्तित्व में धसता-सा मालूम पड़ता है। जनार्दन के दिमाग में अचानक यह कल्पना आई कि छाया-रूप ग्रहण करके परकाय-प्रवेश में दक्ष यह आदमी जब कभी निगम साहब के आमने-सामने होता होगा, तब निगम साहब कैसा अनुभव करते होंगे? इधर राजरानी ने चाय छोटी तिपाई पर रखी ही थी कि जाने कैसे जनार्दन के मुंह से निकल गया, "निगम साहब से इधर आपकी मुलाकात कई दिनों से नहीं हुई, शायद, भटनागर साहब?"

राजरानी में हुई प्रतिक्रिया को उसने देखा तो नहीं, लेकिन जैसे सुना हो। आंखें तो उसकी भटनागर साहब में ही अटकी थीं। भटनागर की त्वचा, उसे लगा, पानी की तरह इधर-उधर बहने में समर्थ है। उसे यह अहसास थोड़ी-सी दहशत में डालने वाला-सा लगा कि इस वक्त एकाएक ऐसा महसूस हुआ है, जैसे इस व्यक्ति की आंखें चमगादड़ों की तरह अपने इर्द-गिर्द उड़ती मालूम पड़ रही हैं।

इस बीच भी भटनागर ने एक शब्द नहीं कहा, मगर उसे जाने क्यों लगा कि भटनागर की बातें सुनते-सुनते उसके कान थक चुके हैं।

राजरानी बिल्कुल उसकी बगल वाली कुर्सी पर बैठ चुकी थी। इस औरत में जाने कैसी एक मायावी-सी ऊष्मा है, अपने निकट बैठे व्यक्ति पर अपने को हवा में बहती गंध की तरह उंडेलती है। पप्पू की 'ट्यूशन' के क्षणों में भी वह अक्सर ऐसा अनुभव करता रहा है। और इस वक्त तो अब साफ-साफ अनुभव होने लगा था कि वह सिर्फ अपनी मांसलता की ऊष्मा में ही नहीं, बल्कि अच्छी-खासी मात्रा में ली हुई 'शैम्पेन' में भी है।

जनार्दन अभी विमूढ़-सा अपने में ही धंसा दिया गया-सा पड़ा था कि उसे पता चला, जाने कैसे और कब, भटनागर साहब वार्तालाप में हो गए हैं, जैसे जनार्दन के आने से पहले अधूरी छूट गई बात को पूरा करने जा रहे

हाँ।

"तो ऐसा है, राजरानीजी, कि जो उदाहरण उस सिलसिले में मैं आपको दे रहा था, वह भीष्म-पर्व में से था। भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से कहा था कि भोजन करते समय हाथ-पांव धोकर, पूर्वाभिमुख होकर बैठना चाहिए। जहां तक हो सका है, मैंने अपने जीवन में इस नियम को निभाया है। पचास की उम्र में भी मेरी अच्छी तंदुरुस्ती का रहस्य यही है।··· क्यों, साहब, आपकी उम्र क्या होगी? यही तीस-इकतीस? आपके जन्म-स्थान में क्या बृहस्पति उच्च का है यानी 'इक्जास्टेड?' और केन्द्र में चन्द्रमा और शुक्र हैं? हां, निगम साहब क्या हमें याद कर रहे थे इस बीच कभी? इधर लम्बे अरसे से सचमुच मुलाकात नहीं हुई। कहिएगा, कभी हमारी तरफ निकल आएं, तो शतरंज रहे। हां, तो राजरानीजी, आप क्या जिक्र कर रही थीं कि फर्रुखाबाद की तरफ आप इसी महीने जाने वाली हैं?"

"हां, मम्मीजी का बुलौवा आया है। यहां निगम साहब बच्चियों का एक स्कूल खोलना चाहते हैं और उद्घाटन हमारी मम्मीजी से करवाना चाहते हैं। पापा तो, आपको पता है, जब हम सिर्फ दस वर्षों की थी, तभी चल बसे थे। आपके ट्रांसफर का क्या हुआ?"

"यहां के 'ट्रक ओनर्स एसोसियेशन' की तरफ से 'मेमोरेण्डम' गया है लखनऊ। आजकल ईमानदारी का मतलब हो गया है ज्यादती। खैर, अब सरकार हमारा यहां से ट्रांसफर भी करेगी; तो जहां हम चाहेंगे और प्रोमोशन पर। फर्रुखाबाद से आप हम लोगों के लिए दो बढ़िया-सी दरें जरूर ले आएंगी···"

जनार्दन को लगा कि जैसे अगले किसी भी क्षण यह व्यक्ति 'अच्छा तो, मैं चलूं।' कह देगा और इसका उठकर जाना, राजरानी के पास बाघ के घायल किए हुए पशु की तरह छूट जाना होगा। एकाएक ही वह अपनी पूरी शक्ति लगाकर उठा और 'अच्छा, नमस्कार!' कहता, हाथ जोड़े जोड़े दोनों की ओर घूमता, बाहर बरामदे में निकल आया।

सीढ़ियां उतरते उसे लगा, जैसे मेढकों पर से पांव बचाते उतरा हो। उसे उन दोनों का सम्मिलित ठहाका, हो सकता है, सिर्फ अपनी कल्पना के कारण ही सुनाई दिया हो। हो सकता है, राजरानी को कुर्सी पर से सीध-

कर, अपनी साल तक ले आने का उद्यम भटनागर ने वास्तव में न किया हो। होने को यह भी हो सकता है कि भटनागर ने उसके बरामदे से नीचे उतरते ही पूछा हो कि 'यह चूतिया कौन था ?' और राजरानी ने 'मास्टर साहब !' कहते हुए, भटनागर को वह किस्सा सुनाया हो, जिसे वह मास्टरों की निरीहता को लेकर, खुद उसे सुना चुकी है !

यहां चतुर्मास में ज्यादा मारक उमस होती है। वह पसीने में लथपथ हो चुका था। गलियारे में से साइकिल बाहर निकालने से पहले उसने रूमाल से अपनी छाती और पीठ पर का पसीना पोंछा, फिर तेजी से साइकिल चलाता निगम साहब के घर की ओर चल पड़ा। वह खुद नहीं समझ पा रहा था कि इस वक्त निगम साहब के घर जाने की जरूरत ही क्या है। जाने क्यों उसे सिर्फ इतना अनुभव हुआ कि भटनागर प्रेतच्छाया की तरह अभी भी उसके अस्तित्व पर लदा हुआ है। उसने असमंजस में होते-होते, अंततः दोटूक फैसला ले लिया कि अब राजरानी वाली 'ट्यूशन' पर जाएगा नहीं।

'कालबेल' बजने के साथ ही किसीके उठने और कमरे में कुछ बजने की आवाज सुनाई पड़ी।

'कौन है ?' के जवाब में 'मैं हूं, निगम साहब, भट्ट !' सुनते ही, निगम साहब ने दरवाजा खोला, तो दरवाजा एकाएक खुलने पर तेज हो चली हवा में शराब की गंध जनार्दन के नथुनों तक चली आई। जनार्दन को याद हो आया कि भटनागर भी पिए था और बड़ी देर तक पान चबाता रहा था, फिर भी, शराब तो शराब है।

उसने सोचा, निगम साहब से कहे कि इस वक्त वह वापस लौट जाए, कल किसी वक्त, किन्तु अभी वह अपने ठिठकेपन में ही था कि निगम साहब ने उसका हाथ पकड़ लिया और भीतर को चले। बायें हाथ से दरवाजा बंद करते हुए, बोले, "आप बहुत ही संकोची हैं, भट्ट साहब !"

जनार्दन ने देखा, निगम साहब के उठते वक्त हाथ की ठेस लगने से मेज पर से नीचे गिर पड़ी पीतल की तश्तरी कालीन पर उलटी पड़ी है

और दालमोठ चारों ओर छिटकी इस बात की गवाही दे रही है कि निगम साहब आज पूरी मुक्ति में हैं। श्रीमती निगम फैजाबाद गई हैं, अपने बड़े भाई के यहां। वहां उनकी भाभी का देहांत हो गया है। यह बात वह भटनागर को भी बताना चाहता था, मगर वह शख्स मीम्स-पर्व से फर्रुखाबादी पर्दों तक इतनी तेजी में खींच ले गया सारे प्रसंग को, कुछ कहने की गुंजाइश ही नहीं रही।

निगम साहब सोफे पर बैठ चुके थे और उनका इस वक्त का बैठना सचमुच, निष्णात रामकथा-वाचक का-सा बैठना था। व्हिस्की के सुरूर में सूत-भर चेहरे पर से बाहर को खिल आई-सी त्वचा के कारण, निगम आध्यात्मिक मुद्रा में बैठे प्रतीत हो रहे थे। उनके चेहरे पर, आंखों में भटनागर वाली बात कतई न थी। कांइयापन और हिकारत में सने आदमी की नहीं, अपनी सम्पूर्ण निश्छलता में डूबे व्यक्ति की-सी निर्मलता निगम साहब को लगभग दिव्य बनाए हुए थी। जैसा इस वक्त, वैसा खिला-खिला-सा व्यक्तित्व निगम साहब का, जनार्दन ने इससे पहले कभी देखा नहीं था।

वह अभी असमंजस में ही था कि निगम साहब ने सिगरेट जला ली और उसे हुक्के की-सी शक्ल में करते हुए, बोले, "मैं करीब दो घंटे से चुप में पड़ा था, भट्ट साहब! अरे साहब, जाने क्या हुआ कि मैं आज एकाएक अपने 'पास्ट' में चला गया। मुझे अपने बाप-दादाओं के चेहरे याद आते चले गए।...और खुद अपना चेहरा, जब मैं यहां इसी शहर के परियाग टेसन पर उतरा था और झोले में हाईस्कूल-इंटरमीडिएट के सार्टीफिकेटों के साथ सत्तू बंधा पड़ा था और पैसे थे—सिर्फ सात रुपये!...खैर, वो लम्बी कहानी है। आपको जरा कष्ट दूंगा। नीचे तश्तरी गिरी पड़ी होगी। सामने आलमारी खुली पड़ी है। इसमें थोड़ी दालमोठ लेते आए। वहीं भगौने में रसगुल्ले पड़े होंगे—चार ठो एक दूसरी तश्तरी में अपने लिए लेते आएं। और चम्मच। मैं जानता हूं, आप लेंगे नहीं। दरअसल यह चीज, जिसका नाम शराब है—या तो 'गिल्टी कांशस' से सफर कर रहे लोगों के पीने की चीज है—और फिर या ऋषी-मुनियों-शायरों-कवियों के पीने की चीज! बाकी के जो लोग इसे पीते हैं, अपनी जिन्दगी और शराब,

दोनों को ख़राब करते हैं।"

जनार्दन को लगा, निगम साहब इस वक्त धर्मासन पर बैठे-से बोल रहे हैं। उनके कहने में एक अमूर्त दबाव-सा है।

वह उठा। वापस लौटा, तब तक में निगम कांच के छोटे-से खूबसूरत 'कटवर्क' वाले गिलास को सम्पूर्ण कर चुके थे और बर्फ़ की शुगर-क्यूब जैसी शक्ल वाली डालियां ऊपर तैरती वास्तव में आकर्षक लग रही थीं।

जनार्दन की उम्मीद के विपरीत, इस बार, निगम खुद उठ खड़े हुए और जब फ्रिज के पास से लौटे, तो बियर मग में शर्बत लिए हुए।

जनार्दन ने गौर किया, सोफे पर पालथी मारकर बैठते में निगम साहब पहले कुछ क्षणों को अपने शरीर को साधते हैं, जैसे योगाभ्यास कर रहे हों। पानी और बर्फ़ मिलाकर, निगम ने शर्बत का गिलास भी ठीक वैसे ही लहजे में तैयार किया, जैसे व्हिस्की का गिलास हो।

"हां, तो मैं आपसे कह रहा था कि ये एक ऐसी चीज है, जो तीसरे पेग पर जाते ही आपको अपनी जगह पर से या तो कान पकड़कर उठा लेती है, या कंधे पर हाथ रखते हुए। या आपको दूर 'पास्ट में धकेल देती है, या 'डीप फ्यूचर' में। अंग्रेजी गलत इस्तेमाल कर जाऊं, तो माफ करें। दरअसल ये जो व्हिस्की है, अगर सच्ची है, तो यह अपने-आपमें 'सुपर-लैंग्वेज' है—'ग्रैमर' की बंदिशों से आजाद! यह आदमी को पैर से सिर तक सिर्फ़ 'तत्त्व' बना देने वाली चीज है। लेकिन जैसाकि मैंने कहा, ये सबके लिए नहीं, सबके बूते की नहीं और सबकी दोस्त नहीं।...मगर, भट्ट साहब, बिलीव मी...इस हरामजादी को अगर आप पा गए, तो आपके भीतरी 'केयास' में आपकी सबसे बड़ी हमदर्द है यह! हमराज है! हम-बिस्तर है! हम-ख्वाब है!"

निगम साहब ने अपने सिर को हलके से झटका, तो लगा, जैसे सिर पर गिरा पानी झटक रहे हों। जनार्दन को लगा, वहां राजरानी और भटनागर के सामने से उठ आना आसान था। यहां निगम साहब के सामने से चल निकलना मुश्किल है।

"ऐसा है, भट्ट साहब! कभी जिंदगी में मौका मिलेगा, तो आप भी पावेंगे

कि पांव में चुभे कांटे को निकालना एक चीज है और हाथों में थमे फूल को फेंकना, बिल्कुल दूसरी चीज। खैर, ये 'सुपर लैंग्वेज' की चीज है, शर्बत से समझना मुश्किल है!"

निगम साहब हंसे, तो कमरे के बीचोबीच रखा गया पैडस्टल पंखा भौचक्का रह गया प्रतीत हुआ।

"लीजिए, एक 'एक्सपेरीमेण्ट' करते हैं, मिस्टर भट्ट! आप तो, खैर, आदतन चुप बैठे ही हैं, मैं भी खामोश हो जाता हूं।...और आप ये 'मिराकेल' देखिए, आज खुद अपनी आंखों से—बल्कि कहूं कि कानों से देखिए और आंखों से सुनिए—कि मैं अपने भीतर इकट्ठा हो चुकी 'सुपर लैंग्वेज' को आपके शर्बत के गिलास में छोड़ देता हूं—जादुई बुकनी की तरह!... मैंने आपसे कहा था ना, कि तीसरे पेग में यह या तो 'पास्ट' में पहुंचाती है, या 'फ्यूचर' में? तो आज जरा गिनकर तीन घूंट शर्बत पिएं तो सही पहले—और फिर ध्यान लगाएं आप, तो जोतषी हो जाएं, जनाब! आप जानते हैं कि मैं क्रिमीनल केसेज 'डील' करता हूं। एक मुवक्किल से मैंने चौथे पेग में उगलवा लिया कि हां, उसने बीस साल पहले एक कत्ल किया था, जिसमें उसकी नामजद रिपोर्ट तक नहीं दर्ज हुई। गांव की छोटी नदी में बाढ़ आई हुई थी और बाढ़ में दोनों आसामी बह गए। एक ऊपर वाले की किरपा से बच गया, दूसरे की लाश बहकर, जाने कहां निकल गई। तैराक वह तेज था, मगर गड़ासे की मार के बाद कितना तैरता? तो मिस्टर भट्ट, कहना मैं ये चाहता हूं आपसे कि आदमी की 'लाइफ' में कुछ खास 'मोमेण्ट्स' आते हैं। अब देखिए, कोई नहीं जानता कि कब कोई कत्ल कर बैठेगा। भंवर में आप फंस गए, फंस गए।...आपको मेरी बातों से लगता होगा कि मैं बहक चुका हूं? मेरा जवाब होगा कि अपनी सही 'टोन में आ चुका हूं। मिस्टर भट्ट, आप देखते हैं ना—मैं काफी छोटे कद का आदमी हूं। जितने में डूब जाऊं, उतनी दूर तक बढ़ जाना मेरी 'नेचर' में नहीं। मैंने अपनी लाइफ को 'स्वीमिंग टैंक' बना लिया है। राजरानी का फोन आपसे पहले मुझ तक पहुंच गया था...लेकिन सवाल ये है, मिस्टर भट्ट, कि हम जरूरत भर से ज्यादा की उम्मीद ही क्यों करें दूसरों से? अब देखिए, आपकी 'वाइफ' इतनी वेल-एजूकेटेड औरत हैं कि उन्हें यूनिवर्सिटी या कम से कम

कालेज में लेक्चरर होना चाहिए—आपने, शायद, कहीं 'एप्लाई' भी करवा रखा है ?—मगर मैं प्राइमरी स्कूल चलाता हूं । मेरे यहां 'पे-स्केल'—जैसी किसी चीज का कोई वजूद ही नहीं।···राजरानी कह रही थीं, 'मास्टर साहब बहुत पवित्र आदमी हैं । पवित्र आदमी का हाजमा कमजोर होता है !' यकीन मानिए, मिस्टर भट्ट, राजरानीजी के इस 'कमेण्ट' पर मैं दीवाना हो गया, और पूरा गिलास एक सांस में गटक गया ।"

अपना वाक्य पूरा करते-करते, निगम साहब ने गिलास उठाया और एक सास में पूरा गटकने के बाद, धीमे से मेज पर रख दिया जैसे विदा कर रहे हों। उनका चेहरा अब और सूफियाना हो गया था । उन्होंने धीमे से आंखों पर से ऐनक हटाते हुए कहा, "माइनस थ्री, प्वाइंट सिक्स है ! इसे उतारकर गायब कर दीजिए—चारों तरफ अंधेरे से भी ज्यादा दहशत में डालने वाली 'स्पेस' भंवर की तरह घूमती मुझे दबोच लेगी ।···मगर मेरी 'नेचर' में ही 'एडजस्टमेंट' है । मैं एक एक्स्ट्रा ऐनक हमेशा अपने 'पोर्टफोलियो' में रखता हूं ।"

जनार्दन को लगा, जैसे निगम साहब ऐनक उठाकर नहीं, आंखों पर की चमड़ी उतारकर दिखा रहे हों। वह कुछ हतप्रभ हो गया । शराब पी लेने पर बहकते हैं, कभी गुंडों और कभी फकीरों की तरह बोलने लगते है—इतना सुन रखा था। कई बार हलके सुरूर में देखा भी था, मगर आज से पहले हमेशा निगम साहब की ओर से पहल हुई कि उसे यथासम्भव जल्दी और निहायत संक्षिप्त वार्तालाप में ही विदा कर दिया जाए । आज पहली बार है कि निगम साहब कुछ इस किस्म की मुद्रा में दिख रहे हैं, जैसे सारी रात उसके साथ बितानी हो ।

सचमुच लगभग पौने ग्यारह का वक्त हो गया, घर वापस पहुंचते ।

मीता इस बीच चिंता में रही है, यह दरवाजा खोलने से पहले के उसके 'कौन है ?' की आवाज से ही आभास मिल गया था । आज से पहले कभी ऐसा नहीं हुआ कि नौ से ज्यादा वक्त हो गया हो । अक्सर मीता चिढ़ाती रही है कि 'हो तुम सचमुच के मास्साब !'

सुशील सो चुका था । मीता सब्जी गरम करने चौके में चली गई, तो

वह भी वहीं पहुंचकर, आसन खींचकर बैठ गया। खाते तक में सारी बातें बता दीं। यह भी कि कल से अलोपीबागवाली 'ट्यूशन' पर नहीं जाना है।

"मुझे इस शख्स की दो बातें बहुत अच्छी लगीं—पेट में कपट नहीं; दिमाग में बदी नहीं। कहने लगे कि 'भट्ट साहब, ये छोटा तालाब है। पड़े वक्त का ठहरना कीजिए।' कौन अपने बारे में यों कह सकता है कि 'साहब, मैं क्रिमीनल केसेज डील करता हूं, मगर मेरा केस सिर्फ ऊपर वाला डील करेगा!' कहां, क्या इस आदमी की जिन्दगी में गलत है, कुछ कहा नहीं जा सकता, मगर रहस्य कहीं है जरूर। आखिर कहने लगे कि राज-रानी के उनके बीच 'एडजस्टमेंट' है। आर० टी० ओ० भटनागर इस 'एड-जस्टमेण्ट' को नहीं तोड़ सकता। मेरे ख्याल से निगम इन दो औरतों के साथ वैसे ही जिंदगी गुजार रहे हैं, जैसे दो ऐनकों के साथ।"

"और, मास्साबजी, आप हैं कि दो औरतों के बीच ऐसे हो गए हैं, जैसे कोई नदी पार करने को उतावला दो नावों में हो गया हो! एक नाव में उसका जिस्म पड़ा हो, दूसरी में आत्मा।" मीता खिलखिलाई, वह संकोच में गड़ गया।

बोला, "तुम फिर मेरा मजाक बनाने पर उतर आईं!"

"अरे, भई, वो भी आई थी। सवित्तरी! बड़ी देर तक अग्रवाल के घर का किस्सा सुनाती रही। अनुराग नाम है उसका। सवित्तरी का दीवाना हुआ जा रहा है। कह रही थी, 'हमारे मास्टर साहब तो देवता आदमी हैं।'...मैंने मजाक कर दिया, 'देवता दक्षिणा के लोभी होते हैं।' बोली—'प्राण भी ले लें, तो दिया जैसा न मालूम पड़े।' अच्छा, तुम इस धोखे में कभी न रहना कि सीधी गंवार लड़की है। बहुत 'विटी' है। कहती है—'शरारत पर उतर आती हूं, बहूजी, तो अपना गरीब बाप भूल जाता है—लगता है, जाने सिर्फ ऊपर वाले की बिटिया हूं।'...अच्छा, सुनो, निगम साहब कुछ मेरी 'अप्लीकेशन' के सिलसिले में भी कह रहे थे?'

"कह रहे थे—'यह स्कूल चलाने का धंधा भी एक 'सोशल क्राइम' है। खरी समाजवादी सरकार हो, तो हम जैसे लोग जेलों में ठूस दिए जाएं। चूंकि हमारी सरकारें खुद अपने में आज तक 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' ही हैं, और इनका धंधा भी समाज को लूटना-खसोटना ...

हम जैसे लोगों की गुमटियां भी चल रही हैं।'...और जानती हो, मीता, उस आदमी ने अन्त में क्या कहा ?"

मीता ने अपना चेहरा पूरी तरह उसके सामने कर लिया, बोली कुछ नहीं।

"बोले कि 'आपने मुझे नंगा देख लिया है। मुझे माफ कर देंगे, तो आपको भी शांति मिलेगी।'...अजब आदमी है। हां, तुम्हारे लिए भगत-तारन डिग्री कालेज की मैनेजिंग कमेटी के मेम्बरों से बात करने का वादा भी कर रहे थे। फिलहाल 'एडहाक एप्वाइंटमेण्ट' ही हो जाता, तो भी काफी था। हम लोग अधर में टंगे हुए से जमीन पर पांव टिका लेते।"

चारपाई पर पहुंचकर, जनार्दन ने मीता को धीमे से अपनी ओर किया और मुंह खोलकर, जोर से सांस छोड़ी, "जरा देखो तो, कहीं मेरे मुंह से शराब की बदबू तो नहीं आ रही ?"

मीता को आश्चर्य की मुद्रा में होते देख, वह धीरे से हंस पड़ा, "नहीं, भई, तुम्हारे मास्साहब ने 'व्हिस्की नहीं पी है, सिर्फ शर्बत ही पिया है'... मगर निगम साहब की पी हुई जाने क्यों अपने भीतर भी महसूस होने लगी है। आज तो दोनों जगह ऐसे संकट में फंस गया कि लग रहा है, अंधेरे जंगल में का भागता घर पहुंचा हूं।"

"पालतू जानवरों का हाल यही होता है!" कहते हुए, मीता ने स्नेह से उसके माथे पर हाथ फेरा और उठकर सुनील की बगल में सो गई।

वह थोड़ी देर आंखें बंद किए लेटी मीता को गौर से देखता रहा। कितने थोड़े समय में कितना स्त्रीत्व आ गया है इसमें—जैसे सूखी नदी में जल आ गया हो। इलाहाबाद पहुंचने से पहले इसका स्त्री होना जैसे सिर्फ अपनी देह तक सीमित था, अब जनार्दन के अस्तित्व तक भर गई है।

वह उठा, बत्ती बंद की और खुद भी सो गया।

१४

इसे संयोग के अलावा क्या कहा जाए कि सितम्बर इक्कीसवीं को 'एड-हॉक एप्वाइंटमेण्ट' की सूचना मिली, इस निर्देश के साथ कि पहली अक्तूबर से 'ज्वाइन' कर ले—उन्नीस से ही एकाएक तबीयत खराब हो गई और लेडी डॉक्टर श्रीमती बरुआ ने तुरन्त अस्पताल में भर्ती हो जाने को कह दिया। प्रारम्भ में, जब असमय तकलीफ अनुभव होने लगी, दोनों की धारणा यही थी कि पहली बार भीषण गर्मी झेलनी पड़ी, लगातार तीन-चार महीने, इसीकी प्रतिक्रिया होगी, किन्तु श्रीमती बरुआ ने कल ही बताया है कि केस कुछ 'कम्प्लीकेटेड' दिखता है।

सुबह स्नान और पूजा से निवृत्त होकर, वह सवित्तरी की प्रतीक्षा करने लगा, तो एकाएक यह ध्यान हो आया कि यही सवित्तरी थी, जो लगभग सदैव प्रायः उन्हीं क्षणों में उपस्थित होती थी, जब वह 'दुर्गा सप्तशती' का पाठ कर रहा होता था। इधर लगभग डेढ़ महीने से सवित्तरी के आने का क्रम एकाएक गड़बड़ा गया है। न सिर्फ आने का क्रम, बल्कि आते-जाते में पालतू बिल्ली में की-सी निर्द्वन्द्वता भी जैसे धीरे-धीरे बिखरती चली गई है। अभी कल भी तो मीता ने यही कहा था कि 'क्या बात है, सवित्तरी, इन दिनों तुम्हारा आना-जाना तो बिल्ली की तरह का हो गया—कब आओगी, कब चल दोगी, कुछ ठीक नहीं—मगर रहना पराये मन का !'

जवाब में जिस विनय भाव से 'ऐसी कुछ बात तो नहीं, बहूजी ! बापू की तबीयत ठीक नहीं चल रही, इसीमें जी उदास रहता है।' कहा था

सवित्तरी ने, मगर उसमें जितना विषाद था, विश्वसनीयता नहीं थी।

वे लोग चाय पी चुके, तब सवित्तरी पहुंची। मीता ने उसके लिए चाय बचा रखी थी, नाश्ता भी। अभी सवित्तरी चाय के बरतन धोने में ही थी कि जनार्दन यों कहता बाहर निकल गया, "सवित्तरी, मैं रिक्शा लेने जा रहा हूं। बहूजी को अस्पताल में भर्ती करना होगा। तुम मेरे लौटने तक घर देखोगी।"

सवित्तरी ने अपनी ही जगह पर स्थिर रहते हुए, थोड़ा-सा सिर घुमाया और चारपाई पर गद्दे का सहारा लिए बैठी मीता की ओर देखा और फिर चुपचाप सिर झुका लिया।

काम निबटाकर वह मीता के पास आ बैठी। इस बीच मीता का चुप बैठे रहना उसपर बोझ की तरह लदता गया था। वह मीता के अभी तक भी थोड़े गीले बालों को संवारने लगी, तो मीता ने हाथ पीछे ले जाकर उसके सिर को अपने कंधे पर झुका लिया, "क्यों, क्या बात है, सवित्तरी!··· तू आजकल एकाएक इतनी खोई-खोई क्यों रहने लगी? हम लोगों से नाराज है क्या?"

सवित्तरी का फूट-फूटकर रो पड़ना मीता से वहन नहीं हो पाया। वह निहायत थकी-सी, बिस्तर पर लेट गई। बोली, "सवित्तरी, गरीब बेटी को सचमुच एक सिर्फ मां-बाप का आसरा होता है, मगर तू फिक्र मत कर, शिवचरन को कुछ न होगा। क्या बताऊं, मैं देखने आती—मेरी खुद ये गत हो गई है, जाने बचती हूं कि नहीं। बाबूजी से कह दूंगी। किसी अच्छे डॉक्टर को दिखवा देंगे। अभी पांच-सात रोज पहले तो आया था शिवचरन, तब सिर्फ कमजोर-भर दिखता था।"

सवित्तरी चुपचाप उसका माथा दबाती रही। मीता ने अपनी आंखों को बंद कर लिया, "सवित्तरी, हो सकता है, इस बार मैं जिंदा···" सवित्तरी की मांसल हथेली में उसके होंठ दबकर रह गए। उसने धीमे से सवित्तरी की कलाई पकड़ ली।

मीता को अस्तपाल में भर्ती करते, 'एक्स-रे' करवाते—बारह बज गए। श्रीमती बरुआ ने बता दिया कि गर्भ में बच्चा क्षतिग्रस्त हो चुका

है और भीतर ही मर जाए, इससे पहले ही 'आपरेशन' करना होगा।

लौटने लगा, तब वह लगभग रो पड़ने को था। मीता कुछ देर उसका हाथ चुपचाप पकड़े रही, फिर धीमे से मुस्कराई, "नारी देह के दण्ड तो भुगतने ही होते हैं, सुनील के बाबू! तुम चिन्ता न करना और सुनो, मेरे संदूक में डाकखाने की पास-बुक पड़ी है। रामनगर से यहां ट्रांसफर करा ली थी। शायद, सैंतीस सौ रुपये हैं। तुम्हें तो पता तक न होगा। नौकरी करती थी, इसलिए हो पाए कुछ जमा। मैंने दो फार्म दस्तखत करके रख दिए हैं। जितनी जब जरूरत पड़े, निकाल लेना। हां, सौ रुपये सवित्तरी को दे देना। बाप की बीमारी से परेशानी में हैं वो लोग। कभी समय निकाल-कर देख भी आना।"

जनार्दन को लगा, जैसे डूबे को उबार लिया गया है। उसके भीतर यही चिंता लगातार मंडरा रही थी, पैसों की अल्पता में कहीं मीता के उपचार में कमी न रह जाए।

मीता से चाबी लेकर, वह तेजी से घर की ओर चल पड़ा, ताकि दो बजे से पहले रुपये निकाल ले। उसने तय किया कि चार-पांच सौ रुपये थोड़ा एकांत करके लेडी डॉक्टर श्रीमती बरुआ को उनके निवास पर ही दे आएगा, ताकि आपरेशन करने में वे कुछ विशेष ध्यान रखें। इसके अलावा 'प्राइवेट वार्ड' में कमरे की व्यवस्था करवा लेगा, जनरल वार्ड में तो एक दहशत-सी महसूस होती है। कई बार जान-पहचान के लोगों को देखने जाना पड़ा है, तो यही लगता रहा है, खुद डॉक्टर जनरल वार्ड के मरीजों को हिकारत की नजरों से देखते हैं। आज भी जाने क्यों यही अनुभव हुआ कि मौजूदा व्यवस्था में तो बाहर भी सारा देश प्राइवेट और जनरल वार्डों में बंटा हुआ है। नौकरी ढूंढने जाओ, कोर्ट-कचहरी जाओ, बाजार में खरीदारी करने जाओ। सर्वत्र सिर्फ संवेदनशून्य पशुजगत में पहुंच जाने की छटपटाहट होने लगती है।

सवित्तरी सुनील के साथ कैरम खेल रही थी। उसको आते ही फिर बाहर निकलने की हड़बड़ी में देख, पूछा कि खाना लगा दे, मगर वह यह कहता बाहर निकल गया कि, "बस, आधा घंटा और रुक जाना, जरा डाक-

घर तक जा रहा हूं। वहूजी के लिए खाना तुम्हीं दे आओगी। इस वक्त के खाने के वाद उन्हें भूखा रहना होगा। कल सुवह ही आपरेशन होना है।"

सवित्तरी ने अव आंखें उसकी ओर करके देखा, तो वह एक क्षण को रुका और कहता गया, "वच्चा पेट में ही नष्ट हो गया है। आपरेशन करके निकालना जरूरी हो गया है। पहले वीमार पड़ी थीं, शायद उसका 'रिएक्शन' हो गया है।"

डाकघर से लौटने और अफरा-तफरी में कुछ खा लेने के वाद, जनार्दन ने सवित्तरी को मीता के लिए खाना ले जाने को कहा, "सवित्तरी, अपने सामने खिला देना। मेरा जी तो जाने क्यों डरने लगा है। वर्षों के वाद हम लोगों की कुछ ढंग की गृहस्थी वसनी शुरू हुई थी कि यह मुसीवत आ पड़ी। हालांकि तुम, शायद, खुद मुसीवत में हो···। मगर इधर कम से कम आपरेशन हो जाने तक तुम्हें मीता की देख-भाल करनी होगी। शिवचरन को मैं देख आऊंगा। तवीयत ज्यादा खराव हुई, तो रमेश डॉक्टर साहव को दिखा···"

"नहीं वावूजी, ऐसी कोई खास फिक्र की वात नहीं। अव तो ठीक-ठाक हैं।" सवित्तरी वोली, तो जैसे अपने आस-पास तने जाले साफ करती-सी।

"तुम्हारे लिए मीता ने सौ रुपये देने को कहा था, लौटते में लेती जाना। यहीं ऊपर वाले खाने में रखे रहेंगे।"

सवित्तरी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह लगातार आमने-सामने पड़ते भी, अपने चेहरे को अनुपस्थित कर लेती-सी जान पड़ती है। उसके व्यवहार से, या चेहरे और आंखों से—उन लोगों के प्रति अवज्ञा या अप्रियता झांकती नहीं, किंतु सवित्तरी में परिवर्तन आया है, यह अव उसके आते-जाते, काम करते में पतझर में झरते पत्तों की नामालूम-सी आवाज की तरह अपने को प्रकट करता रहता है।

सवित्तरी आंखों से ओझल हो चुकी थी, मगर उसका सम्मोहन छाया की तरह छूट गया अनुभव होता है। जनार्दन थकान अनुभव करता चारपाई पर लेट गया और सुनील को अपने पास वुलाकर, सीने

पर बिठा लिया, तो उसका 'ममी कहां है ?' पूछना, सयानों का पूछना लगा।

"मम्मी छिस्टर लेने गई ?" सुनील ने फिर पूछा।

उसे याद आया, इधर वह कहने लगा था। कुछ दिनों के बाद मां घर से दूर जाएगी और उसके लिए 'छिस्टर' लाएगी।

"वैसी ही छिस्टर ? लंगीन ?"

सुनील के आलमारी में रखी गुड़िया की तरफ उठे हाथ को देखते हुए, एकाएक उसे वे कुछ क्षण याद आ गए, जब श्रीमती बरुआ का बताना कानों में कूड़े की तरह गिरता अनुभव होता रहा था। उसने पाया, आंखों में चुभन-सी हो रही है। पास में पड़े ट्रांजिस्टर को उठाते हुए, उसने सुनील का ध्यान बंटाने का इरादा कर लिया और साथ-साथ यह भी सोचता रहा कि प्राइवेट वार्ड में कमरा मिला तो क्या करना ठीक होगा। सुनील के साथ खुद वहां मीता के साथ रहना, या सवित्तरी को"'किंतु वह वहां रहने की बात को स्वीकार करेगी भी ?

उसे अभी काफी फासले पर ही सही, कभी-कभी जाने क्यों यह आशंका भी आकार लेती-सी मालूम पड़ती है कि कहीं मीता को कुछ हो गया"' तो ? हालांकि इस आशंका के कल्पना में उभरते ही, वह उसे राह चलते में पांवों से अचानक उलझ गए गदे चीथड़े की तरह दूर फेंक देने की कोशिश करता है, लेकिन जाने क्यों इसके बाद भी गर्द की तरह इतना अपने इर्द-गिर्द छूट गया-सा लगता है कि मा को खो चुके सुनील के साथ सवित्तरी के वार्तालाप में होते हुए वह कैसी मानसिक स्थितियों में होगा ? क्या इसके बाद भी वह यों ही सुनील की देखभाल करने आती रहेगी ?

उसे लगा, श्रीमती बरुआ की बातें उसके कानों में कनखजूरों की तरह भर गई हैं और ये सारी अप्रीतिकर कल्पनाएं मन में समाए दहशत की उपज-भर हैं। जब उचित समय पर आपरेशन होने जा रहा है, तो तकलीफ चाहे जितनी हो, जोखिम नहीं ही होना चाहिए।

सवित्तरी के लौटने तक वह सो चुका था, सुनील भी। दरवाजा यों ही उढ़का था, सवित्तरी का कमरे में आ जाना उसे पता नहीं चला।

सवित्तरी कुछ क्षणों तक उसे चुपचाप और एकटक देखती रही। उसके

चेहरे पर विषाद की छाया थी, जैसे कोई दुःस्वप्न देख रहा हो। सवित्तरी रसोई में गई और चाय बनाने की तैयारी में भी सावधानी बरतती रही कि शोर न हो। मीता ने कहा था कि अगर सोया न हो तो चाय देकर, जल्दी भेज दे, सुनील के साथ।

सवित्तरी चाय लेकर नजदीक पहुंची, इस बीच जनार्दन की नींद एकाएक टूटी थी, और सवित्तरी के रसोईघर में होने को उसने जान लिया था, मगर आंखें बन्द किए रहा।

सवित्तरी ने 'चाय' कहा, तो आंखें बंद किए हुए ही उसने सवित्तरी के हाथ को धीमे से यों पकड़ा, जैसे गहरी नींद का अलसाया, मीता समझ रहा हो उसे। हाथ आगे बढ़ाकर, सवित्तरी को स्पर्श करने की मानसिक तैयारी करते हुए मन में एक अजीब-सा धुंधलका था, हाथ पकड़ लेने पर स्वच्छ शीतल हवा के किसी झोंके को छू लेने की सी अनुभूति हुई। इस लड़की में कोपलों की तरह उदित होता गया-सा स्त्रीत्व मन में निरंतर एक प्रीति-भाव भरता चला गया और अब अनुभव हो रहा है कि यह सब प्रकृति की तरह ही स्वाभाविक था। इसमें दोष कहीं नहीं है। मुग्धता मानवचित्त का विकार नहीं, संस्कार है, मगर सवित्तरी, शायद, इतनी दूर तक देख न पाएगी। जनार्दन उसको लेकर जो अक्सर बड़े भाई या पिता की सी चिंताओं में हो जाता रहा है कि अंततः क्या होगा इस गरीब बाप की बेटी का? जंगल में के फूल का सा इसका स्त्री होना कैसा है, जैसे पैदा न होकर, प्रकट हुई हो! मीता भी तो यही कहती थी कि यह अपवाद रूप से सुंदर लड़की है।

सवित्तरी ने अत्यंत धीमे, लगभग ऐसे शांत मनोभाव से अपना हाथ अलग कर लिया, जैसे उसके सोचे हुए को सुनती गई हो।

चाय पीते हुए जनार्दन लगातार निश्चय करता रहा कि हालांकि यह एक नाजुक वक्त है, किंतु मीता से वह इस प्रसंग को कहेगा जरूर। नहीं, मन में कहीं भी ऐसी अपराध-भावना की जकड़न नहीं है। वह फूल को छू लेने में अनुभव हुई-सी इस मुग्धता को छिपाएगा नहीं। मीता के स्वभाव को वह जानता है। उसके दुर्वृत्ति में न होने को मीता साफ-साफ अनुभव कर पाएगी और अपनी इस अस्वस्थता में भी मजाक करने में चूकेगी नहीं।

पत्नी के विश्वास का बंधन सबसे ज्यादा मजबूत होता है। विश्वास स्त्री को बड़ा बना देता है और आदमी को गलत हो जाने से, जितना गरिमा रोक सकती है, शायद, अंकुश नहीं।

जनार्दन ने एकाएक अनुभव किया कि मीता को अवसर और देने चाहिए कि वह कुछ कहानी-उपन्यास-निबंध-जैसी चीजें लिखे, तो यह सब असम्भव तो है नहीं। मीता का आपरेशन सफल हो जाए तो वह यहाँ उसके साथ रहते हुए शुरुआत कर सकता है।

मीता के बारे में सोचते-सोचते वह सवित्तरी की उपस्थिति को भूल गया था।

उसने कहा, "बहूजी कही थीं, सुनील को साथ लेते जाएंगे आप…"

एकाएक ही उसने सवित्तरी की ओर देखा और इस एक क्षण में सवित्तरी का चेहरा पूरा-पूरा दिख गया उसे—बेदाग और निश्छल।

उसका मन हुआ कि कहे, 'सवित्तरी, तुम यों प्रतिमा-सी खड़ी होती हो, तो स्तुति करने को मन होता है।' मगर कहीं इसने एकाएक कह दिया कि 'बाबूजी, हमसे मजाक न किया कीजिए।'…याकि 'बाबू साहेब, हम गरीब घर की बेटी हैं, रोजी की खातिर घरों में काम करती फिरती हैं—मगर हमारी भी इज्जत है!'…तो ?

उसने अपने भीतर एक सिहरन-सी अनुभव की और अब तक के सारे सोचे हुए को समेटकर, एक ओर रखता हुआ-सा बोला, "सवित्तरी, तुम क्या दो-चार दिन बहूजी के साथ रह सकोगी ?"

"नहीं साहिब ! बहूजी ने कहा है कि हम गनेशी के साथ यहाँ पर घर रहेंगी। ऑपरेशन के दिन और दो-तीन दिन बाद तक बहूजी पप्पू को साथ रखना नहीं चाहती हैं। कहती थीं, वहाँ परेशान होगा। बच्चे को वहाँ रखना ठीक भी नहीं। ऑपरेशन के बाद तो बहुत आराम की जरूरत पड़ेगी।" सवित्तरी एक सांस में कह गई। अपने सिर को उसने किंचित् झुका जरूर लिया था, मगर उसके बोलने में एक संक्षिप्त-सी गरिमा का आभास था।

वह कुछ न कह पाने की स्थिति में अटका पड़ा था कि सवित्तरी आगे बढ़ी और सुनील के कपड़े ठीक करने में जुट गई। सुनील के जूतों में अभी

धूल को अपनी धोती के किनारे से पोंछते-पोंछते ही, वह बोली, "आप लोग चले जाएंगे, तब हम दरवाजा बाहर से बंद करती चली जाएंगी। बहूजी बहुत विस्वास करती हैं न हमारा, कभी धोखा खा लेंगी, तब जानेंगी। हमने बहुत कहा, हमें न सौंपिए, मगर मानीं नहीं। कहती थीं, 'अरे तू कोई नौकरानी है, सवित्तरी—छोटी बहन है, मेरी।'...जो खुद बड़ा होता है; वह दूसरों को भी बड़ा कर देता है। जो खुद नीच होते हैं, दूसरे को भी गिराते हैं।...हमने बहूजी से कहा था कि प्राइवेट में तो रसोई भी बन सकती है, वहीं कुछ स्टोव-बरतन उठा ले जाएं क्या। मना करने लगीं कि दो-चार दिन के लिए कहां इतना बवाल किया जाय। शाम का खाना हमसे यहीं बना लेने को कही हैं। आज आप वहीं रहेंगे तो...मैया दयाती बनीं, तो हंसती-खेलती घर लौटेंगी जल्दी ही। हम तो अभी भी उम्मीद करती हैं; बच्चा भी ठीक-ठाक होगा। बड़ी-बूढ़ियां कहती हैं कि सात महीने के तक जिंदा बच जाते हैं।...यों तो बहूजी की जिंदगी रही तो देने वाला और देता रहेगा।..."

जनार्दन सुनील को जगाना चाहता था, मगर सवित्तरी की बातों में उलझा, सुनील की पीठ पर यों ही हाथ रखे रह गया। सवित्तरी का इस वक्त का धाराप्रवाह बोलना जैसे नदी का बहना था। द्वन्द्वों से ऊपर उठी हुई उसकी आवाज। बीच में वह कुछ सहमा था कि नीच लोगों के द्वारा दूसरों को भी छोटा किए जाने की बात कहीं उसने जनार्दन के द्वारा हाथ पकड़ लिए जाने के प्रसंग में तो नहीं कही थी।

उसने घूरकर, सवित्तरी की ओर देखा। ऐसा नहीं दिखा, जो कांच के टुकड़ों की तरह गड़े। वह कहने को हुआ कि 'सवित्तरी, इस आपरेशन के बाद फिर, शायद, मीता मां बन नहीं सकेगी।'...मगर कहा नहीं।

अस्पताल को जाते समय, जनार्दन कहता गया, "सवित्तरी, ताला-चाबी के नीचे दबाकर तुम्हारे लिए रुपये भी रखे हैं। लेती जाना जाते समय।"

सवित्तरी साथ-साथ बाहर निकलने की बात सोच रही थी, मगर रुक गई। वह सुनील को अंगुली थमाए बाहर निकला, तो दरवाजे तक निकल आई। मोड़ पर पहुंच चुकने के बाद, जनार्दन ने यों ही पलटकर, घर की ओर देखा, तो दरवाजे से लगकर खड़ी सवित्तरी को देखकर, एकाएक उसके

भीतर एक अजीब और अभूतपूर्व-सी कल्पना कौंध गई। सवित्तरी पर सोचने से अपने को अलग करता हुआ-सा, वह अपेक्षाकृत तेज कदमों से आगे बढ़ गया।

रात के प्रारम्भ होते ही, मीता ने सुनील को घर वापस ले जाने को कह दिया, सुनील के साथ खुद भी बरामदे तक आई और सवित्तरी ने सुनील को गोद में उठा लिया, तो माथा चूमती बोली, "आज आंटी के साथ रहना, सुनो! मेरा बेटा तो बड़े प्यार से अपनी सवित्तरी मौसी के साथ रहेगा। बिल्कुल अपने बाप पर गया है ना!···कहानियां सुनाने को कहना मौसी से। 'रुनक-झुनक मैया आई रे मंदिरवा' वाला गाना भी सुनना, हां! सवित्तरी, तुलसीजी का दीया जरूर जला देना।···और सुन, कल सुबह जल्दी न आना। बाबूजी जाएं, तब।"

जनार्दन अपनी जगह पर गड़ा-सा सवित्तरी और गणेशी को जाते देखता रहा। मीता के बोलने में प्रसन्न दिखने की कोशिशों के बावजूद अवसाद अब साफ अनुभव होने लगा है। जिस जोखिम से सुबह-सुबह गुजरना है मीता को, वह रात के प्रारम्भ होते ही जैसे उसके कंधों पर बाज की तरह आ बैठा है।

मीता को सहारा दिए, वापस जनरल वार्ड में लाते-लाते जनार्दन को लगा, जैसे चिंता और विषाद उसके गले तक आ पहुंचे हैं। हवा नितांत मद्धिम है वार्ड में, फिर भी जाने क्या है, जो भील के पानी की तरह तलवों पर से ऊपर उठता-उठता, कानों के इर्द-गिर्द महसूस होने लगता है।

जनरल वार्ड के भयावह वातावरण में आत्मीय वार्तालाप के हो सकने की सहूलियत कतई नहीं है। सिर्फ औपचारिक बातें कर लेने भर की गुजाइश मालूम पड़ती है।

"प्राइवेट वार्ड में कमरा कल सुबह ही मिलेगा। मैडम कह रही थीं कि ऑपरेशन के बाद सीधे वहीं रखा जाएगा तुमको।"

"मैं हिम्मत हारने लगूं, सुनील के बाबू, तुम न हारना। आज ही प्राइवेट वार्ड मिल गया होता, तो मैं रात देर तक तुमसे बातें करती। आज मैंने पहली बार अनुभव किया है कि मां-बाप मरते वक्त बच्चों को ढेर सारी बातें क्यों समझा जाना चाहते हैं।···सुनो, तुम बच्चों का-सा जी

न बना लिया करो। जीवन तो जीवन है, इसके संकटों से भागने लगो, तो और बढ़ते हैं। खुद मुझे पूरा विश्वास है, मुझे कुछ नहीं होगा।...मगर एक लम्बे वक्त तक ज्यादा बोलने की इजाजत भी तो नहीं देंगी, डॉक्टर? तुम समझो कि सामने बैठे होगे, मेरे मन में ढेर सारी बातें उमड़ती होंगी, लेकिन चुप रहना होगा।...दरअसल, मुझे यह कल्पना बोझ मालूम दे रही है कि ऑपरेशन के पहले मुझे बेहोश किया जाएगा। हो सकता है, आपरेशन दो-तीन घंटे चले।...और यह एक पूरा युग होगा, जब मैं तुम लोगों के बिना अकेली रहूंगी।"

जनार्दन ने देखा, मीता ने अपनी आंखों को धीमे से मूंदा है। उसके हाथ को अपने दोनों हाथों में थोड़ा कसकर पकड़ा है और बंद पलकों में से आंसू ओस की बूंदों की तरह प्रकट हो रहे हैं।

वह चुपचाप मीता को देखता रहा। यह क्षण खुद के विगलित होने का नहीं, इस स्त्री को सांत्वना दे सकने का है—यह अहसास होते ही, उसने अपने-आपको संतुलित कर लिया और संकोच त्यागकर, बायें हाथ से मीता का माथा सहलाने लगा।

वह रात मीता की बेड के समीप जमीन पर सोया था। बड़ी देर नींद आई ही नहीं, लेकिन लगभग तीन बजे के बाद जो आंख लगी, तो सब कुछ नींद की गहराइयों में डूब गया। सुबह आंख खुली, तो वार्ड की खिड़कियों के पास तक चली आई नीम की टहनियों पर फुदकती चिड़ियों का चहचहाना सबसे पहले सुनाई पड़ा और जनार्दन को यह सब अत्यंत प्रीतिकर लगा। चिड़ियां ऐसे मधुर स्वर में चहचहा रही थीं, जैसे नये जीवन की अगवानी में गा रही हों।

उसने बैठते हुए, मीता की ओर देखा—वह जाने कब की जगी थी। उसके चेहरे पर रात के वक्त का विषाद तो नहीं था, लेकिन एक शांत थकान-सी जरूर थी।

१५

आपरेशन के बाद की तीसरी शाम जनार्दन मीता के लिए मौसम्बी-डबलरोटी लेने कर्नलगंज सब्जीमण्डी की ओर निकला, तो अस्पताल वापस लौटने से पहले सीधे डेरे पर चला गया। सोचा, सवित्तरी ताजा दूध ले आई होगी। सुनील को वह मीता के पास ही छोड़ आया था। अस्पताल वाली दाई कमरे में है, देखेगी। आज से अस्पताल से छुट्टी मिलने तक, अब दोनों मीता के कमरे में ही सोएंगे। सवित्तरी, शायद, इस वक्त खाना बना रही होगी। लेता जाएगा।

घर पहुंचा, तब अंधेरा हो चला था। रोशनी वाली जगहों से अस्तित्व-रक्षा में भागा हुआ-सा अंधेरा ओट की जगहों में काफी गहरा हो गया था। मीता के पास से घर पहुंचने तक के इस अंतराल में जनार्दन ने अनुभव किया कि आपरेशन की सुबह वाले त्रास की स्थिति से अब तक पूरी तरह मुक्त हो चुका है। यह ठीक है कि अब मीता मां बन सकने की संभावना को खो चुकी औरत है, किंतु उसने अब अच्छी तरह अनुभव कर लिया है कि पत्नी की आवश्यकता आदमी को सिर्फ बच्चों की परवरिश के लिए ही नहीं होती, खुद अपनी परवरिश के लिए भी होती है। उसे याद है, आप-रेशन के क्षणों में बरामदे में चहलकदमी करते वक्त उसने मीता के लिए प्रार्थनाएं की थीं। ईश्वर से ही नहीं, पिता से भी।

उसे याद है, जब आपरेशन के दूसरे दिन मीता को बताया गया था, तो उसने धीमे से मुस्कराते हुए कहा था, 'अगर तुम्हें 'छोटा परिवार सुखी'

परिवार' से संतोष न मिले, तो कहीं नियोग करके ले आना दो-चार बच्चे। पालन-पोषण मैं कर दूंगी, यह वादा रहा !'

'कहीं' पर मीता ने कुछ इस तरह जोर दिया था, उसे एकाएक जाने क्यों सवित्तरी याद आ गई थी। अब, इस वक्त, वह घर से सिर्फ चंद कदमों के फासले पर है और उसके भीतर इन तीन दिनों में सवित्तरी के साथ बीता समय गड्ढे में भरते जल की तरह इकट्ठा हो आया है। बीच के कुछ अर्से में अन्यमनस्कता में डूबी-सी सवित्तरी इस बीच पूरी तरह आत्मीय हो आई थी। आपरेशन वाले दिन चिंता से उसका कैसा बुरा हाल था ! अचानक ही रोने लगती थी।

आज सुबह जब वह नहाने, पूजा करने लौटा था, पानी, कच्छा-बनियान, तौलिया रखते, चाय-नाश्ता तैयार करते हुए कैसी लगती रही थी सवित्तरी ! स्त्री जब अपने सम्पूर्ण स्नेह में होती है, तो कैसी रची गई-सी अनुभव होती है !

उसने ज्यादा देखा नहीं था सवित्तरी की ओर, मगर, शायद, लगभग अपने समूचेपन में उसे अनुभव करता रहा था। सवित्तरी पूजा-घर और तुलसी वाले गमले में दीये जला चुकी थी। दरवाजा उढ़काया था, मगर खिड़की में से रसोईघर में बैठी सवित्तरी साफ-साफ दीख रही थी। मीता की दी हुई यह केशरिया किनारे वाली सफेद धोती पहने रहती है, तो पीठ की ओर से दूसरी मीता लगती है। मीता अस्पताल में भर्ती न होती, कहीं पास-पड़ोस में गई होती, तो वह सीधे जाकर सवित्तरी को अपनी बांहों में भर सकता था और सवित्तरी के चौंकने या नाराज होने की मुद्रा में होने-होने तक, तुरंत कह सकता था, 'अरे, तुम हो सवित्तरी ! मैं समझा, मीता है। माफ करना, देखने में धोखा हो गया।'

उसने धीमे से दरवाजा खटखटाया। 'कालबेल' लगा लेनी है, यह बात फिर याद आ गई। सवित्तरी 'आई, बाबूजी !' कहते हुए इस ओर आती खिड़की से साफ दीख गई और लगा कि देख चुकी है।

दरवाजा खोलने के साथ ही वह थोड़ा-सा एक ओर हट गई थी। कमरे में रोशनी तेज नहीं थी और उस थोड़ी मद्धिम-सी रोशनी में सवित्तरी और सघन हो आई-सी महसूस हो रही थी।

"बहूजी की तबियत तो बिल्कुल ठीक है ना, साहेब ?" उसने पूछा, तो वह सहसा उत्तर न दे सका। दरवाजा बंद करके सिटकनी लगाई। जैसे अपने को कहीं अंतरिक्ष में पा रहा हो, खुद के ही लिए अपरिचित-सी आवाज में बोला, "बिल्कुल ठीक है। तुम तो ठीक हो ना ?"

जनार्दन ने साफ अनुभव किया कि उसके बदले हुए स्वर की प्रतिक्रिया सवित्तरी में हुई है और जैसे उसका चेहरा आईना हो गया है।

सवित्तरी के प्रति अपने अनुराग को जनार्दन ने महसूस किया कि वह सवित्तरी के चेहरे पर ज्यादा साफ-साफ देख पा रहा है। सवित्तरी के प्रतिबिम्ब-भरे दर्पण जैसे चेहरे पर एक चौकन्नापन-सा आ चुका था और वह 'सब्जी न लग गई हो,' कहती रसोईघर की ओर मुड़ी ही थी कि जनार्दन ने उसे अपनी बांहों में भर लिया और जब तक में सवित्तरी ने अप्रत्याशित किस्म की सी तेजी से उसे झटककर, अपने से अलग किया—जनार्दन को अपने नदी में समा चुकने की अनुभूति हुई। उसे लगा, इस वक्त, वह रोशनी या अंधेरे में फर्क कर सकने जितनी चेतना भी खो चुका है।

सवित्तरी ने अपने को इतने वेग से छुड़ाया था कि वह लगभग गिरते-गिरते बचा। उसे लगा कि अब इसके बाद सवित्तरी रुकेगी नहीं। या तो तेजी से रसोईघर की ओर जाएगी और या अपने घर की ओर। वह तिरस्कार और ग्लानि के बारे में एकदम स्वत्वहीन हो चुका था। उसे लग रहा था, अपनी इस स्तब्धता में से उबरने में जाने कितना समय लग जाएगा। सवित्तरी प्रतिरोध करेगी, इसकी कल्पना भी कहीं मन में होती, तो वह कदापि अपनी मर्यादा न त्यागता—यह अहसास उसे और ज्यादा जड़ीभूत किए था।

सवित्तरी वहीं, अपनी जगह खड़ी थी। अपने सारे विक्षोभ को समेटती-सी वह बोली, "बाबू साहेब, ये सब अच्छी बात नहीं। आप तो देवता आदमी हैं। हम जैसी नाचीज औरत को छूना आपको शोभा नहीं देता। आप बैठें, हम आपके लिए चाय लाती हूं।"

उसे चाय पिलाने और खाना-दूध वगैरह सब सहेज देने के बाद,

सवित्तरी उसके साथ-साथ वाहर निकली। जनार्दन के हाथ खाली नहीं थे। सवित्तरी ने ही दरवाजा बंद किया और ताला लगाने के वाद चावी जनार्दन को देती वोली, "वहूजी से कह दीजिएगा, अव हम सुवह की वेला देखने आएंगी।"

सवित्तरी के, आगे निकलकर, ओझल हो जाने तक वह अपनी ही जगह खड़ा रह गया। गली में खड़ा कुत्ता उसे अपनी ओर घूरता-सा लगा। डोलची साइकिल में लगा लेने के वाद, थोड़ी दूर तक वह इस भय में साइकिल थामे पैदल ही चलता रहा, कि सवित्तरी दुवारा न मिल जाए।

जव वह मीता के पास से चला था, अव उसे साफ-साफ याद आया कि तभी से कहीं किसी सुदूर अंधेरे कोने में सवित्तरी की स्मृति उसमें भोर के तारे की तरह उदित हो चुकी थी। सवित्तरी के निकट पहुंचने तक में वह खुद एक तरह की रोशनी में हो चुका था। सवित्तरी को अपनी चेतना में अनुभव करना निरंतर सघन होता गया था।…और अव सवित्तरी उल्का की तरह टूट पड़ने के वाद, उसे एक सम्पूर्ण अंधेरे में डुवो गई है।

मीता के पास पहुंचने-पहुंचने तक वह अपने भीतर ही भीतर पूरी तरह परास्त हो चुका था। शिवचरन का—वहां मीता के पास वैठा होना उसे ईश्वरीय दण्ड जितना वेधक लगा और वह 'मैं अभी आया, मीता! वाहर जरा एक-दो दोस्त मेरा इंतजार कर रहे हैं।' कहता, तुरत वाहर वरामदे में निकल आया और अस्पताल के मुख्य द्वार से काफी फासले पर इस प्रतीक्षा में टहलने लगा कि शिवचरन वाहर निकल आए।

१६

दूर से आती मीता को वह देखता रहा। घर से कुछ दूरी पर ही वह रिक्शा पर से उतर गई। जनार्दन और सुनील को देखते ही उसका चेहरा आत्मीयतापूर्ण मुस्कराहट से भर गया। नजदीक आ गई, तो जनार्दन ने साफ महसूस किया—मीता की आंखों में कालेज से लौटते समय की थकान से ज्यादा गरिमा और संतोष का भाव है। बरामदे में रखी सब्जी की थाली देखते ही, मीता हंसी, "अब तुम मेरी घरवाली हो चुके हो!"

जनार्दन ने कोई उत्तर नहीं दिया, किंतु उसका उदास हो जाना मीता से छिपा नहीं। वह तुरत चाय बनाने रसोईघर को जाने लगी थी कि जनार्दन ने हाथ पकड़ लिया। बोला, "पहले कपड़े तो बदल लो, मीता!··· और जब घरवाली का खिताब दे चुकी हो, तो हक न छीनो। चाय मैं बना लाता हूं।"

मीता ने उसके सिर के बालों को मुट्ठी में भर लिया, "चलो, उधर बैठो। कपड़े बदल लेने पर ही चाय बनाऊंगी अब।···मगर, श्रीमानजी, आप ये न भूलें कि होम-डिपार्टमेंट में तुम सिर्फ 'एवजी' हो, 'पर्मनिण्ट' नहीं!"

अस्पताल से वापसी के बाद कैसी अनंत ममतामयी-सी हो चली है यह औरत! इसके खिलखिलाने में अब कहीं जाकर, विवाह के तुरत बाद के दिनों की-सी तरुणी का आवेग गूंजता सुनाई पड़ता है।

रात के भोजन के बाद, सुनील के सो जाने तक तो मीता अपने कालेज

की बातें सुनाती रही। यह भी कि प्रिंसिपल श्रीमती अग्रवाल तो उसपर मुग्ध हैं और 'मीता बेटी, मीता बेटी,' पुकारते हुए, बिल्कुल मां हो आती हैं। सिर्फ सप्ताह-भर की नौकरी में ही इतनी आत्मीयता किसी और टीचर को कभी इस कालेज में मिली न होगी, ऐसा प्रायः कहने लगे हैं लोग।

"हो भी तुम ऐसी ही, मीता !"

"मुझमें जो कुछ प्रिय लगता होगा दूसरों को, सुनील के बाबू, उसमें जाने कितना तुम्हारा दिया होगा। अच्छा, सुनो, कालेज में नौकरी मिल जाने के बाद से मुझमें कुछ अहंकार भाव जागने लगा है। अब अगर मैं तुम्हें 'सुनील के बाबू' की जगह जनार्दन कहकर पुकारने लगूं, तो तुम इंफीरियरिटी काम्प्लेक्स से पीड़ित तो न हो जाओगे ?"

मीता का पड़ोसियों का लिहाज रखते हुए खिलखिलाना कैसा उसे अपनी मर्यादा में बहती नदी-सा कर देता है ! नींद में डूबने-डूबने को हो चुके सुनील ने धीमे से आंखें खोलीं, तो मीता ने उसकी आंखों को चूम लिया।

"अब तुम सुनील को चूमती हो, तो मुझे अपनी त्वचा पर सिहरन अनुभव होती है।"

"सिर्फ सिहरन—उत्तेजना नहीं ? हो पंडित ही !"

"पोंगापंडित नहीं कहा तुमने···"

"सवित्तरी का आना तो छूट ही गया।"

वह समझ नहीं पाया, एकाएक क्यों मीता को सवित्तरी की याद आ गई, किंतु जैसे एकाएक उसने तय किया और धीरे-धीरे वह सारा प्रसंग बता गया, जो मीता के आपरेशन की तीसरी शाम सवित्तरी के साथ घटित हुआ था।

"मीता, मैं शायद तुमसे माफी मांगने का हकदार नहीं रहा···"

"हां. काफी देर कर दी तुमने 'कनफेस' करने में···नहीं तो, शायद माफ कर ही देती।···देखो, जनार्दन, पति-पत्नी का रिश्ता तो ऐसा है कि दोनों में से कोई एक ईश्वर के आगे क्षम्य न रहे, तो भी दूसरे के सामने रहे।···तुम दरअसल पोंगापंडित हो। बेकार इतने दिनों तक बोझ ढोते रहे। तुम्हीं न कहा करते थे कि बाबूजी बताते थे कि रथ के दो पहिये होते हैं पति-पत्नी।

अपना कोई बोझ अकेले ढोने लगे, तो इसमें ज्यादा कठिन और तकलीफ-देह कुछ और नहीं। तुम्हारा सारा बर्ताव सिर्फ स्वाभाविक था। उस रोज शिवचरन को देखते ही तुम्हारा चेहरा उतर गया था, मैं आज समझ पाई कि क्यों। जिसमें हया होती है, मर्यादा होती है, वह पश्चात्ताप में डूबता है, सुनील के बाबू, बेहया तो 'रेप' के बाद भी मूछों पर ताव देते हैं। तुमने, मैं खूब जानती हूं, यह सारा प्रसंग मुझसे छिपाने की चालाकी में अपने भीतर नहीं दबाए रखा, बल्कि अपनी शर्म में नहीं कह पाए तुम।...मगर मेरी समझ में अब भी यही नहीं आ रहा है कि नविसरी ने ऐसा किया क्यों? आने को तो वह मेरे अस्पताल से लौटने के बाद भी करीब बीसेक रोज तक आती रही..."

"वह तुम्हारे पूरी तरह स्वस्थ हो जाने के इंतजार में होगी।"

"मैं बिल्कुल दूसरी बात सोच रही हूं। मेरे लिए ताज्जुब की बात यह है कि तुम्हें इस तरह दुत्कार क्यों दिया उसने।"

"इसमें ताज्जुब की बात क्या है, मीता! मुझे वह शरीफ आदमी समझती रही और मेरी हरकत से उसको एकाएक 'शाक' लगा होगा। उसके विश्वास को चोट लगी होगी। और दूसरी बात यह है, मीता कि उसके मन में जरूर कहीं यह पीड़ा भी जागी होगी कि एक गरीब-बीमार रिक्शेवाले की बेटी न होकर, वह अच्छे खाते-पीते घर की बेटी होती, तो न यों पराये घरों में नौकरी करती होती, न उसे छेड़ने की कोई हिम्मत करता। उसे मेरा छेड़ना, अनुराग में छेड़ना न लगा होगा गरीब लड़की के साथ मालिक की गंदी हरकत मालूम पड़ी होगी। मैंने उस दिन लगातार यह महसूस किया कि शराफत के खोल में कहीं मैं बच्चालाल से भी ज्यादा दुश्चरित्र व्यक्ति हूं। यह सचमुच कितना बड़ा पाप है मीता कि हमें किसी गरीब के बेटी में अपनी बहन-बेटी का प्रतिरूप न दिखाई पड़े, बल्कि इस विकार के मारे हमें उचित-अनुचित कुछ सूझे ही नहीं कि यह गरीब है, बेसहारा है—इसे दबाया जा सकता है फुसलाया जा सकता है!"

मीता ने धीमे से उसके होंठों पर अपनी हथेली रख दी। गौर से उसके पश्चात्ताप-भरे चेहरे को देखती रही, तो पाया कि जनार्दन की आंखों में आंसू भर आए हैं।

थोड़ी देर दोनों के बीच सिर्फ मौन उपस्थित रहा। जनार्दन को संयत देखते ही, मीता ने उसे करवट घुमा दिया और कंधों को धीमे-धीमे दबाती कहती गई, "सब नष्ट हो जाय, आदमी के भीतर का करुणा भाव न नष्ट हो, तो समझो कुछ नहीं गंवाया है। तुम्हारी बातों ने आज मेरा औरत होना सार्थक कर दिया।···देखो, अचानक ही मुझे याद आ गया कि नर्से बातचीत कर रही थीं आपस में कि लड़की थी। अब इस वक्त और तृष्णा अनुभव हो रही है कि काश, उसे एक झलक देख तो लेती! कैसा अबूझ है यह औरत होना! बच्चे की आकृति को पहली-पहली बार का देखना—कितना चमत्कार पूर्ण होता है वह क्षण किसी मां के लिए! लेकिन, देखो, तुम इस मुगालते में न पड़ जाना कि भविष्य में मां न बन पाने की कुंठा में बोल रही हूं। तुम्हारे ही शब्दों में दो बच्चों की मां तो मैं आज भी हूं ही और दो से ज्यादा में आज-कल नौकरी तक से हटाया जा सकता है!"

कुछ क्षण, मीता, हंसती रही। फिर लगा, चेष्टापूर्वक हंसना वेदना को और गाढ़ा बनाएगा। चुप हो गई।

जनार्दन ने करवट लिए-लिए ही कहा, "सो जाओ, मीता, बहुत थकी होगी। अभी तुम्हें काफी दिनों तक आराम की जरूरत होगी।"

"देखती हूं, कब तक लेने देते हो आराम!" मीता ने धीमे से चुटकी भर ली, उसकी पीठ पर, तो वह चिहुंक उठा। मीता धीमे से उठती, बत्ती बुझाती सुनील वाली चारपाई पर चली गई। कुछ क्षणों के बाद, धीमे से बोली, "मुझे अभी भी नहीं लगता कि सवित्तरी तुम्हारे छूने से नाराज हो गई होगी।···आखिर मैं भी तो औरत हूं और औरतों के सोचे हुए तक की गंध ले सकती हूं।"

वह तेजी से मीता की ओर पलटा, मगर अंधेरे में आर-पार तक कहीं कुछ दिखाई नहीं पड़ा।

१७

साल-भर बीतते न बीतते जाने कितना परिवर्तन आ गया है। सुनील स्कूल जाने लगा। जनार्दन को डी० फिल० की उपाधि ही नहीं मिल गई है, बल्कि शोध ग्रंथ छपना भी शुरू हो गया। पूरी आशा है, शीघ्र ही कहीं प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति हो ही जाएगी। फिलहाल निगम साहब के स्कूल में पढ़ाने के साथ-साथ, प्रबंध का कार्य भी देख लेता है और निगम आशा से अधिक ही देने लगे हैं। सुनील भी आखों के सामने रहता है उसके। मीता भी निश्चित भाव से कालेज जा पाती है।

मां परसों ही आ गई थीं, मगर थकी-सी थीं सो संगम नहाने की बात आज तक के लिए टाल दी गई। आज रविवार तो नहीं, मगर छुट्टी है।

मां इस बार अकेली आई हैं—जनार्दन की बनारस वाली मामी और उनके बेटे-बहू के साथ। वे लोग शुक्र की शाम ही बनारस चले गए। जाते-जाते मामी कहती गई थीं कि जनार्दन के मामाजी का कहना है कि डॉक्टरेट की डिग्री मिल जाए तो शहर में नहीं सही, जिले के किसी डिग्री कालेज में नियुक्ति करवा ही लेंगे।

इस नौकरी वाली बात पर तो मीता ने ध्यान ही इसलिए नहीं दिया कि वह नहीं चाहती कि दोनों को अलग-अलग शहर में नौकरी करनी पड़े या कि वह भगततारन वाली नौकरी छोड़ दे। मगर अपनी मा का जनार्दन की मामी से कहा हुआ नहीं भूलता कि 'विपिन की मा, एक बेल की किस्मत [illegible] गई है इन लोगों की। आगे की आस जाती रही। मैं आस लगा

इस साल जाने में दूसरे नाती का मुंह देखने को मिलेगा।'

मीता कहने को हुई थी कि मां, तुम लोग औरत होने की सारी कृतार्थता बच्चे पैदा कर पाने में ही क्यों देखती हो।' मगर कहा नहीं।

इतना तो है कि अधिक नहीं, पर एक-दो और बच्चों की कामना उसे भी थी। नर्सों का तब का आपस में बतियाते हुए कहना कि लड़की थी—साल-भर से अधिक हो गया—मगर जाने क्यों माथे पर के घाव की तरह रह गया है, मिटता नहीं। रह गई होती, तो आज अपने पैरों चलती होती।

मीता की आंखें अपने-आप आर्द्र हो आईं। अपने अवसाद में से उबरने की कोशिश में वह थोड़ा जोर से पुकार उठी, "इजा, तुम देर लगा रही हो। ठंडे पानी में नहाने से डर लगता है क्या? मगर गंगाजी के नहाने का तो सारा पुण्य ही नहीं, आनंद भी तभी है, जब कड़क सर्दी में नहा आए।"

मां पूजा की सामग्री वाली डोलची लिए, सुनील का हाथ पकड़ती बाहर निकल आईं, "इतना डरती, तो नहाती ही क्यों, मीता? पिछले साल हम माघ में नहीं नहाए थे क्या?"

संगम से लौटते दोपहर हो गई। खाना खा लेने पर मीता की मां ने राजापुर वालों के यहां जाने की इच्छा प्रकट की, 'जनार्दन की ही नहीं, हमारी भी रिश्तेदारी निकलती है।'

मीता और सुनील साथ थे और रिक्शा यूनिवर्सिटी रोड वाले चौराहे से आगे बढ़ा ही था कि इधर मां के मुंह से निकला—'यहीं कहीं नैनीताल वाले जगातियों का होटल बताते थे लोग!'...और उधर मीता के होंठ आश्चर्य में खुले ही रह गए, "सवित्तरी!"

अकेली थी। हाथ में कपड़े का एक झोला। चटख रंगों वाली मामूली-सी धोती और पूरे बांहों का ब्लाउज। एक अंतराल के बाद देखते हुए, लगता है, जैसे कोई दूसरी सवित्तरी है। जब घर पर आती थी, वह लावण्य कहीं विलीन हो चुका लगता है। अल्हड़ तरुणी की जगह, अनुभवों और वक्त से गुजरी हुई-सी औरत ने ले ली है। चेहरे पर का रंग फीका पड़ चुका है। भौंहें उतरी-उतरी-सी लगती हैं।

मीता को देखते ही सवित्तरी में एक कौंध जागी थी, मगर रिक्शे के पास आने की बजाय, दूर ही खड़ी रही। वहीं से हाथ जोड़ दिए।

मीता से नहीं हो पाया कि रिक्शा आगे बढ़वा ले। उतरकर, सवित्तरी के निकट चली गई। सवित्तरी संतुलन न रख सकी। सड़क पर, लोगों के बीच होने को भूलकर, गले से लग गई।

कुछ देर सवित्तरी से बतियाकर, मीता लौटी, तब उसकी आंखें गीली देखकर, मां ने पूछा, "कौन थी रे?"

"तुमने देखी तो थी, मां! हमारे यहां काम करती थी, जब तुम और बाबू आए थे! सवित्तरी!··· तुमको तो, मां, शायद, यहां तक डर लगता था कि वही मेरी सौत न बन जाय?" कोशिश करने पर भी मीता हंस नहीं पाई। रिक्शा आगे बढ़ गया, तो वह फिर सवित्तरी के सोच में खो गई।

शाम राजापुर से वापस लौटते और थोड़ा एकांत पाते ही, मीता ने जनार्दन के कंधे पर हाथ रखते हुए, रहस्य खोलने की-सी मुद्रा में कहा, "सुनो तुम्हारी 'सवित्तरी' मिली थी!"

जनार्दन ने अचकचाकर देखा, तो पाया कि शरारती दिख सकने की कोशिश के बावजूद, मीता की आंखों में विषाद की छाया है। जनार्दन को चकित भाव में टंगा छोड़ते हुए, वह इतना कहती रसोईघर की ओर निकल गई, "अब वह सवित्तरी कहां!·· गले मिलकर रोते में हांफने लगी थी। कह आई हूं कि कल कॉलेज से लौटते में उसके घर जाऊंगी।"

चाय के बाद, जनार्दन को सब्जी के लिए डोलची देते हुए मीता ने धीमे से कहा, "एक बेटी की मां बन चुकी सवित्तरी!"

जनार्दन कुछ कहने को हुआ ही था कि मीता धीमे से मुस्कराती, बोली, "चौंक क्यों रहे हो। साल-भर तो हो गया होगा शादी हुए?"

सोमवार को कालेज से वापसी में, मीता शिवचरन के घर पर पहुंची, तब सवित्तरी घर में अकेली थी। मीता को देखते ही पालतू जानवर-सी विह्वल होती, आगे दौड़ निकल आई और पांव छूने को झुकी ही थी कि उसने दोनों हाथों से खींचकर, गले लगा लिया।

मीता ने देखा, कुछ लोग फासले पर से देख रहे हैं और उन को कुछ ऐसा भाव है, जैसे कोई अजूबा देख रहे हों।

जैसे इंतजार में हो सवित्तरी। मीता के लिए खटोले में साफ धुली चादर पहले ही बिछाए हुए थी। मीता ने मिठाई का डिब्बा एक ओर रखते हुए, पास ही एक ओर छोटे, झीने-से खटोले पर सुला दी गई बच्ची को हाथों में लिया, तो वह रो पड़ी। मीता ने उसके कपोलों को चूमते हुए हाथों में झुलाया तो चुप हो गई।

"हाय सवित्तरी, यह तो बड़ी ही सुंदर-सी है, रे!"

"हम भी और हो चुकीं, बहूजी! आप मुहब्बत जता रही हैं और हम साफ देख रही हैं कि हैरत में हुई जाती हैं आप कि साल-भर मुश्किल से शादी को हुए, ये पांच-छै महीनों की बेटी कहां से आ गई?" सवित्तरी की मुस्कराहट में से फूटी पड़ती-सी वेदना मीता से छिपी नहीं रही।

वह चुपके से उबरती कि सवित्तरी अंगूठे से फर्श कुरेदती-सी बोली, "अब कुछ ढंका नहीं रहा, बहूजी! कहने वाला चिल्ला-चिल्ला के कह गया है कि 'शिवचरन, गाभिन गैया बेचने वाले बहुत देखे थे, गाभिन बेटी ब्याहने वाला बाप नहीं देखा था!'···दूसरी कोई बेटी होती, तो डूब मरी होती। हम बेहया हैं, बाबू के दरवाजे जिंदा पड़ी हैं।"

सवित्तरी फूट-फूटकर रोने में ही थी कि मीता की कल्पना में हलचल-सी मच गई कि कहीं ऐसा तो नहीं कि जनार्दन ने झूठ बोला हो? कहीं इसीलिए तो नहीं छोड़ा था सवित्तरी ने उनके घर आना?

"आप लोग सोचते रहे होंगे कि जाने क्यों सवित्तरी ने काम पर आना छोड़ दिया। शादी पर याद तक न किया। क्या करती बहूजी, एक-एक दिन काटना परबत हो गया। अब आपसे बता रही हूं, जब आप अस्पताल में थीं, एक संध्या बाबूजी ने हमें छुआ था। हमने ऐसे झिटकार दिया, जैसे औरत ना रह गई हों, जिनावर हो चुकी हों। हम कैसे कहतीं, बहूजी, उन देवता सरीखे बाबूजी से कि 'भैयाजी, हमें न छुइए, हम महापापिन हैं। उस दिन तक तो दो महीने पूरे होने को आ गए थे।'···आपसे जिक्र तो किया करती थीं हम उस बनिया के बेटे का? सनीमे का हीरा बन गया वो हमारे लिए और जब बोलीं हम कि 'तुम्हें हमसे शादी करनी होगी, हम किसीको मुंह दिखाने काबिल नहीं रहे हैं।' तो बनिया का बेटा हमारे पांवों से लिपट गया और लगा रोने, जैसे मां-बाप-भाई-बहन, सब इकट्ठे ही मर गए हों!

कहने लगा कि 'सवित्तरी, मार जूतों के हमारी खाल खींच लो, मगर हमारे लिए मौत के अलावा और कोई रास्ता बचा नहीं रहेगा।'...हमने सिर के काकुलों का झोंटा पकड़कर अलग कर दिया कि 'जा, तेरा पाप तेरे, हमारा हमारे हिस्से !'...अंदर से कोई बोला, 'सवित्तरी, गुनहगार तू भी है। इसकी जिनगी नष्ट करके क्या पाएगी।'...बहूजी, गंगाजी की सोचती थीं हम, पोखर में शरण लेनी पड़ी। जिस बच्चालाल से नफरत करती थीं, उसीका पल्ला पकड़ा, मगर जब शादी के सातवें महीने यह अभागन जनमी है, साल-भर उदर में रही जैसी गोल-मटोल, तो आप से बाहर हो गया। ये भी ना देखा कसाई ने कि अभी-अभी तो परसूत से हुई हैं हम। बड़ी मार मारी और यहां बाबू के दरवाजे डाल गया।...आग लगे हमको, अपने ही पाप रोती रह गई हैं, आपको चाय को भी न पूछा।"

आंसू पोंछती, सवित्तरी, बिना मीता की ओर देखे ही, कमरे के भीतरी छोर की तरफ बढ़ गई और चाय बना लेने पर ही वापस लौटी। मीता को इस बीच, लगातार यही अनुभूति होती रही कि भारी बोझ उतरने के बाद की सी थकान हो चली है।

थोड़ा नमकीन, थोड़ा मीठा कहीं अच्छी दुकान से मंगाकर रखा होगा। मीता के आग्रह पर सवित्तरी ने भी चाय ले ली।

"तो अब क्या वापस नहीं ले जाएगा कभी भी ?"

"शायद कभी आए। कभी-कभी तो हमें लगता है कि यह सारा नाटक है उसका। एक दिन वह हमें जरूर वापस ले जाएगा, मगर...जोरू की हैसियत से साथ रखने को नहीं, बेसवा की हैसियत से बाजार में बिठाने को !"

सवित्तरी जैसे बोली नहीं हो, पत्थर की तरह टूटी हो। मीता कुछ सहम-सी गई।

"आप सोचती होंगी, बहूजी, क्या हो गया इस सवित्तरी को। सच, आप लोगों के घर आने-जाने तक हम और थीं, इसके बाद नाश हो गया। गरीब बाप की बेटी से अपनी असमत न संभाली जाए, तो सारा जिम्मा उसीका है—गीधों ने गोश्त खाया, चोंच साफ कर ली। पत्थर का कर लिया है हमने अपना कलेजा और बाबू को वचन दे दिया है कि चाहे जो हो, आत्मघात न करेंगी। बहूजी, कैसा बेबस और दयावान चित होता है गरीब बाप का ! बच्चालाल

जैसे इंतजार में हो सवित्तरी। मीता के लिए खटोले में साफ धुली चादर पहले ही विछाए हुए थी। मीता ने मिठाई का डिब्बा एक ओर रखते हुए, पास ही एक ओर छोटे, झीने-से खटोले पर सुला दी गई बच्ची को हाथों में लिया, तो वह रो पड़ी। मीता ने उसके कपोलों को चूमते हुए हाथों में झुलाया तो चुप हो गई।

"हाय सवित्तरी, यह तो वड़ी ही सुंदर-सी है, रे!"

"हम भी और हो चुकीं, वहूजी! आप मुहब्बत जता रही हैं और हम साफ देख रही हैं कि हैरत में हुई जाती हैं आप कि साल-भर मुश्किल से शादी को हुए, ये पांच-छै महीनों की वेटी कहां से आ गई?" सवित्तरी की मुस्कराहट में से फूटी पड़ती-सी वेदना मीता से छिपी नहीं रही।

वह चुपके से उवरती कि सवित्तरी अंगूठे से फर्श कुरेदती-सी वोली, "अव कुछ ढंका नहीं रहा, वहूजी! कहने वाला चिल्ला-चिल्ला के कह गया है कि 'शिवचरन, गाभिन गैया वेचने वाले वहुत देखे थे, गाभिन वेटी व्याहने वाला वाप नहीं देखा था!'—दूसरी कोई वेटी होती, तो डूव मरी होती। हम वेहया हैं, वावू के दरवाजे जिंदा पड़ी हैं।"

सवित्तरी फूट-फूटकर रोने में ही थी कि मीता की कल्पना में हलचल-सी मच गई कि कहीं ऐसा तो नहीं कि जनार्दन ने झूठ वोला हो? कहीं इसीलिए तो नहीं छोड़ा था सवित्तरी ने उनके घर आना?

"आप लोग सोचते रहे होंगे कि जाने क्यों सवित्तरी ने काम पर आना छोड़ दिया। शादी पर याद तक न किया। क्या करती वहूजी, एक-एक दिन काटना परवत हो गया। अव आपसे वता रही हूं, जव आप अस्पताल में थीं, एक संध्या वावूजी ने हमें छुआ था। हमने ऐसे झिटकार दिया, जैसे औरत ना रह गई हों, जिनावर हो चुकी हों। हम कैसे कहतीं, वहूजी, उन देवता सरीखे वावूजी से कि 'भैयाजी, हमें न छुइए, हम महापापिन हैं। उस दिन तक तो दो महीने पूरे होने को आ गए थे।'''आपसे जिक्र तो किया करती थीं हम उस वनिया के वेटे का? सनीमे का हीरा वन गया वो हमारे लिए और जव वोलीं हम कि 'तुम्हें हमसे शादी करनी होगी, हम किसीको मुंह दिखाने काविल नहीं रहे हैं।' तो वनिया का वेटा हमारे पांवों से लिपट गया और लगा रोने, जैसे मां-वाप-भाई-वहन, सव इकट्ठे ही मर गए हों!

कहने लगा कि 'सवित्तरी, मार जूतों के हमारी खाल खींच लो, मगर हमारे लिए मौत के अलावा और कोई रास्ता बचा नहीं रहेगा।'···हमने सिर के फाकुलों का झोंटा पकड़कर अलग कर दिया कि 'जा, तेरा पाप तेरे, हमारा हमारे हिस्से !'···अंदर से कोई बोला, 'सवित्तरी, गुनहगार तू भी है। इसकी जिनगी नष्ट करके क्या पाएगी।'···बहूजी, गंगाजी की सोचती थीं हम, पोखर में शरण लेनी पड़ी। जिस बच्चालाल से नफरत करती थीं, उसीका पल्ला पकड़ा, मगर जब शादी के सातवें महीने यह अभागन जनमी है, साल-भर उदर में रही जैसी गोल-मटोल, तो आप से बाहर हो गया। ये भी ना देखा कसाई ने कि अभी-अभी तो परसूत से हुई हैं हम। बड़ी मार मारी और यहां बाबू के दरवाजे डाल गया।···आग लगे हमको, अपने ही पाप रोती रह गई हैं, आपको चाय को भी न पूछा।"

आंसू पोंछती, सवित्तरी, बिना मीता की ओर देखे ही, कमरे के भीतरी छोर की तरफ बढ़ गई और चाय बना लेने पर ही वापस लौटी। मीता को इस बीच, लगातार यही अनुभूति होती रही कि भारी बोझ उतरने के बाद की सी थकान हो चली है।

थोड़ा नमकीन, थोड़ा मीठा कहीं अच्छी दुकान से मंगाकर रखा होगा। मीता के आग्रह पर सवित्तरी ने भी चाय ले ली।

"तो अब क्या वापस नहीं ले जाएगा कभी भी ?"

"शायद कभी आए। कभी-कभी तो हमें लगता है कि यह सारा नाटक है उसका। एक दिन वह हमें जरूर वापस ले जाएगा, मगर···जोरू की हैसियत से साथ रखने को नहीं, वेसवा की हैसियत से बाजार में बिठाने को !"

सवित्तरी जैसे बोली नहीं हो, पत्थर की तरह टूटी हो। मीता कुछ सहम-सी गई।

"आप सोचती होंगी, बहूजी, क्या हो गया इस सवित्तरी को। सच, आप लोगों के घर आने-जाने तक हम और थीं, इसके बाद नाग हो गया। गरीब बाप की बेटी से अपनी अस्मत न संभाली जाए, तो सारा जिम्मा उसीका है—गीधों ने गोश्त खाया, चोंच साफ कर ली। पत्थर का कर लिया है हमने अपना कलेजा और बाबू को वचन दे दिया है कि चाहे जो हो, आत्मघात न करेंगी। बहूजी, कैसा बेबस और दयावान चित्त होता है गरीब बाप का ! बच्चालाल

जैसे इंतजार में हो सवित्तरी। मीता के लिए खटोले में साफ धुली चादर पहले ही बिछाए हुए थी। मीता ने मिठाई का डिब्बा एक ओर रखते हुए, पास ही एक ओर छोटे, झीने-से खटोले पर सुला दी गई बच्ची को हाथों में लिया, तो वह रो पड़ी। मीता ने उसके कपोलों को चूमते हुए हाथों में झुलाया तो चुप हो गई।

"हाय सवित्तरी, यह तो बड़ी ही सुंदर-सी है, रे!"

"हम भी और हो चुकीं, बहूजी! आप मुहब्बत जता रही हैं और हम साफ देख रही हैं कि हैरत में हुई जाती हैं आप कि साल-भर मुश्किल से शादी को हुए, ये पांच-छै महीनों की बेटी कहां से आ गई?" सवित्तरी की मुस्कराहट में से फूटी पड़ती-सी वेदना मीता से छिपी नहीं रही।

वह चुपके से उबरती कि सवित्तरी अंगूठे से फर्श कुरेदती-सी बोली, "अब कुछ ढंका नहीं रहा, बहूजी! कहने वाला चिल्ला-चिल्ला के कह गया है कि 'शिवचरन, गाभिन गैया बेचने वाले बहुत देखे थे, गाभिन बेटी ब्याहने वाला बाप नहीं देखा था!'—दूसरी कोई बेटी होती, तो डूब मरी होती। हम बेहया हैं, बाबू के दरवाजे जिंदा पड़ी हैं।"

सवित्तरी फूट-फूटकर रोने में ही थी कि मीता की कल्पना में हलचल-सी मच गई कि कहीं ऐसा तो नहीं कि जनार्दन ने झूठ बोला हो? कहीं इसीलिए तो नहीं छोड़ा था सवित्तरी ने उनके घर आना?

"आप लोग सोचते रहे होंगे कि जाने क्यों सवित्तरी ने काम पर आना छोड़ दिया। शादी पर याद तक न किया। क्या करती बहूजी, एक-एक दिन काटना परबत हो गया। अब आपसे बता रही हूं, जब आप अस्पताल में थीं, एक संध्या बाबूजी ने हमें छुआ था। हमने ऐसे झिटकार दिया, जैसे औरत ना रह गई हों, जिनावर हो चुकी हों। हम कैसे कहतीं, बहूजी, उन देवता सरीखे बाबूजी से कि 'भैयाजी, हमें न छुइए, हम महापापिन हैं। उस दिन तक तो दो महीने पूरे होने को आ गए थे।'''आपसे जिक्र तो किया करती थीं हम उस बनिया के बेटे का? सनीमे का हीरा बन गया वो हमारे लिए और जब बोलीं हम कि 'तुम्हें हमसे शादी करनी होगी, हम किसीको मुंह दिखाने काबिल नहीं रहे हैं।' तो बनिया का बेटा हमारे पांवों से लिपट गया और लगा रोने, जैसे मां-बाप-भाई-बहन, सब इकट्ठे ही मर गए हों!

कहने लगा कि 'सवित्तरी, मार जूतों के हमारी खाल खींच लो, मगर हमारे लिए मौत के अलावा और कोई रास्ता बचा नहीं रहेगा।'···हमने सिर के काकुलों का झोंटा पकड़कर अलग कर दिया कि 'जा, तेरा पाप तेरे, हमारा हमारे हिस्से !'···अंदर से कोई बोला, 'सवित्तरी, गुनहगार तू भी है। इसकी जिनगी नष्ट करके क्या पाएगी।'···बहूजी, गंगाजी की सोचती थीं हम, पोखर में शरण लेनी पड़ी। जिस बच्चालाल से नफरत करती थीं, उसीका पल्ला पकड़ा, मगर जब शादी के सातवें महीने यह अभागन जनमी है, साल-भर उदर में रही जैसी गोल-मटोल, तो आप से बाहर हो गया। ये भी ना देखा कसाई ने कि अभी-अभी तो परसूत से हुई हैं हम। बड़ी मार मारी और यहां बाबू के दरवाजे डाल गया।···आग लगे हमको, अपने ही पाप रोती रह गई हैं, आपको चाय को भी न पूछा।"

आंसू पोंछती, सवित्तरी, बिना मीता की ओर देखे ही, कमरे के भीतरी छोर की तरफ बढ़ गई और चाय बना लेने पर ही वापस लौटी। मीता को इस बीच, लगातार यही अनुभूति होती रही कि भारी बोझ उतरने के बाद की सी थकान हो चली है।

थोड़ा नमकीन, थोड़ा मीठा कहीं अच्छी दुकान से मंगाकर रखा होगा। मीता के आग्रह पर सवित्तरी ने भी चाय ले ली।

"तो अब क्या वापस नहीं ले जाएगा कभी भी ?"

"शायद कभी आए। कभी-कभी तो हमें लगता है कि यह सारा नाटक है उसका। एक दिन वह हमें जरूर वापस ले जाएगा, मगर···जोरू की हैसियत से साथ रखने को नहीं, बेसवा की हैसियत से बाजार में बिठाने को !"

सवित्तरी जैसे बोली नहीं हो, पत्थर की तरह टूटी हो। मीता कुछ सहम-सी गई।

"आप सोचती होंगी, बहूजी, क्या हो गया इस सवित्तरी को। सच, आप लोगों के घर आने-जाने तक हम और थीं, इसके बाद नाश हो गया। गरीब बाप की बेटी से अपनी अस्मत न संभाली जाए, तो सारा जिम्मा उसीका है—गीधों ने गोश्त खाया, चोंच साफ कर ली। पत्थर का कर लिया है हमने अपना कलेजा और बाबू को वचन दे दिया है कि चाहे जो हो, आत्मघात न करेंगी। बहूजी, कैसा बेबस और दयावान चित्त होता है गरीब बाप का ! बच्चालाल

जाते वक्त भी लात जमाने को आगे बढ़ा तो बाबू ने धक्का मारकर दूर कर दिया और लाठी हाथ में उठाकर बोले, 'खबरदार, बच्चालाल, मेरी बेटी को छुआ तो लाश ही उठेगी तेरी !···दुनिया के लिए बेसवा हो जाय, हमारे लिए फिर भी बेटी रहेगी !'···उस दिन हमें पहली-पहली बार ये गरब हुआ, बहूजी, कि सवित्तरी, तेरा गरीब बाप शहर के सारे पैसेवाले बापों से बड़ा है। हम उस दिन···"

सवित्तरी का जैसे पूरा शरीर आंख बन गया। उसका बिलखना जल-भरे घड़े का टूट जाना हो गया। जैसे रोम-रोम से आंसू बिखरने लगे हों। मीता ने सांत्वना देने को, बच्ची को खटोले पर सुला कर, उसे गले से लगा लिया।

"जाने कितने दिनों की पीड़ा आज उतार पाई हूं, बहूजी ! आप नहीं आई हैं, अम्मा आ गई है।···जी यही कर लिया अब तो कि सवित्तरी, जीना है तो बाहर से लोहा बनोगी, तभी भीतर का गीला बचा पाओगी। आदमी भीतर से सूख जाय, तो उसका मरना अच्छा। बच्चालाल भीतर से रूखा काठ है। बाबूजी ने छुआ था, तो लगा था, बहती नदी ने छुआ है क्या···बच्चालाल ने छुआ तो मुर्दे का छूना मालूम पड़ा। आपकी जगह तो मैया सदा-सदा आपको ही देंगी, बहूजी ! मगर प्रार्थना जरूर करती हूं कि हे मैया, यह जनम जैसा दिया—अगले जनम बाबूजी के घर की बहन या बेटी का जनम देना।···आज तो कीच हुई नाले में पड़ी हूं, मगर भीतर कहीं आप लोगों के साथ का बिताया हुआ सुवास की तरह बसा है और मरते दम तक साथ देगा।"

"और तो हम क्या कर सकते हैं, सवित्तरी ! मगर हमारे योग्य जो होगा, जरूर करेंगे। दोष तेरा नहीं, भाग का है। हरामजादे किस्म के लोगों का है। गरीब की बेटी की प्रेम में भी दुर्गत है, शादी में भी। पैसेवाले उसे शौक पूरा करने की चीज समझते हैं और खसम फालतू कहके दुत्कारता है। जहां ममता की आंख का देखना नहीं, वहां पाप सब देखते हैं, वेदना कोई नहीं देखता।··· शिवचरन ने सचमुच बाप का सा दिल पाया है। जो अपनी बेटी को क्षमा न कर सके, उसके दुख को अपने दुख से बड़ा करके न माने—वह बाप नहीं, नर जानवर-भर है, सवित्तरी।···और क्या कहूं, जीवन को ईश्वर की थाती करके जानना ही ठीक है, अपनी नहीं। शिवचरन को सहारा बनी रहो, आगे जैसी ईश्वर की रचना होगी···कुछ पैसों की जरूरत कभी हो···काम पर आना

चाहो। अब तो दोनों नौकरी पर है।…"

"आप लोगों से न कहके किससे कहूंगी, बहूजी ! …फिलहाल पैसों का दुख नहीं है। अभी चार रोज पहले गंगवा भी आया था। बाबू बता रहे थे कि बारा सौ दे गया है और रिक्शा चलाने को मना कर गया है। गनेशी को कहीं काम पर भेजने को मना कर गया है। अगले माह में गनेशी की शादी हो जाएगी। इसके बाद गंगा की भी सोच रहे हैं बाबू !… मगर हम यहां से निकल चलना चाहूंगी जल्दी-जल्दी। पाप का बोझ सिर पर लिए अपनों के बीच का रहना ठीक नहीं। सब कोई बाप नहीं होते। गंगा की तो जिनगी बाबूजी ने सुधार दी…"

"उनको तो सबसे बड़ा पश्चात्ताप यही था सवित्तरी, कि कहीं तुमने यही न माना हो कि गरीब की बेटी समझकर छू लिया। अब अगले रक्षाबंधन को तू आकर उन्हें राखी जरूर बांध जाना…"

"इतनी ताब मुझमें नहीं, बहूजी, कि उनके सामने पड़ने की हिम्मत करूं। कुछ लोग ऐसे होते है, जिनको अपने भीतर ही रखना ठीक होता है। बाबूजी से कहिएगा, जब दुर्गा मैया की पूजा करने बैठा करें, मेरे लिए मौत और अगला जनम, दोनों साथ-साथ मांग दें।"

इस बार सवित्तरी ने एकाएक हंस पड़ने की कोशिश की, तो जैसे घने काले बादलों के बीच से किरण फूटी हो।

मीता उठी, बच्ची को फिर से चूमा। बोली, "जो हो, है तो ये अद्भुत सुंदर, सवित्तरी !"

"पाप का फूल गूलर का फल है, बहूजी ! बाहर चटख लाल, चिकना। भीतर कीड़े पड़े हुए।" सवित्तरी का स्वर एकाएक तीखा हो गया।

"नहीं, सवित्तरी, ऐसा नहीं कहते।…जैसे शिवचरन ने तुमसे घृणा नहीं की, वैसे ही तुम भी इससे नफरत न करना। औरत के भीतर की मां मर गई, तब उसके जिए का धरम कहां।…अच्छा, तू बैठ, मैं चली जाऊंगी।"

सवित्तरी नहीं मानी, साथ कुछ दूर पहुंचाने चल पड़ी। कुछ ही कदम आगे बढ़ी थी कि बच्ची का रोना सुनाई दे गया और मीता ने उसे जिद करके वापस भेज दिया।

घर वापस पहुंचते तो नहीं मगर रात के एकांत में धीमे-धीमे मीता ने

सारा वृत्तांत जनार्दन को सुनाया, वह चुपचाप सुनता ही रहा। वताते हुए, मीता निरंतर अनुभव करती रही कि उसका कहा हुआ सव जनार्दन में इकट्ठा होता जा रहा है।

इस घटना को महीना भी पूरा न वीता था कि एक दिन वहीं सोहवतिया-वाग रोजे के पास शिवचरन मिल गया मीता को। उसने वताया कि सवित्तरी गई वच्चालाल के साथ, वच्ची यहीं है—नाना के पास। वच्चालाल वच्ची को साथ ले जाने को तैयार नहीं हुआ।

"अच्छे इरादे से नहीं ले गया लगता है, वहूजी! उसकी आंखों में हया न थी। मैंने तो सवित्तरी को वहुत मना किया, मगर वह यों कहती चली गई कि 'वावू, अभी विधवा नहीं हुई हूं।'···जानवूझकर यहां से चल दी है। क्या कहूं, किस मुंह से कहूं, वहूजी!···मगर लड़की क्या थी वह, देवी थी, मुझ अभागे से नहीं संभाली गई।"

शिवचरन का रोना मीता के कानों तक चला आया। वह कालेज से लौट रही थी, मगर घर पहुंचने की जगह सीधे शिवचरन के साथ निकल गई कि वच्ची को देखने का वड़ा मन है।

वच्ची को गणेशी टहला रही थी। शिवचरन ने देखते ही कहा, "वहूजी, गरीव वाप का जीना भी पाप, मरना भी। गनेशी को औरतें अभी से यों कहके चिढ़ाने लगीं कि एक-आध साल में ये भी···ऊपर वाले से मौत मांगने की भी तो गुंजाइश नहीं।···गनेशी तो विदा हो जाएगी इसी साल, मगर गंगवा की वहू आएगी, तो वह भी यों न कहने लगे कि, तुम्हारी वहन का पाप मैं क्यों संभालूं।"

मीता ने देखा, शिवचरन का गला रुंध गया है। वह चुपचाप आगे वढ़ती रही। कमरे के निकट पहुंचकर, वच्ची को देखने के लिए वढ़ने की जगह, शिवचरन से अत्यंत धीमे किंतु दृढ़ स्वर में वोली, "शिवचरन, मैं भी तुम्हारे लिए वेटी समान ही हूं। एक दान दोगे?"

शिवचरन विस्मय में ही था कि मीता दोटूक वोली, "तुम्हें पता तो होगा कि मेरे अव वच्चे नहीं होने। इस सवित्तरी की वेटी को मुझे दे दो। सवित्तरी को लिखवा देना कि वहूजी लोगों ने गोद ले ली है। वह इनकार न

करेगी। गलती हो गई, मुझे पिछली बार सवित्तरी से ही मांग लेना था, मगर उन दिनों मेरी मां यहीं थीं।"

जनार्दन बाहर टहल रहा था। मीता को रिक्शे में बैठे और बच्चे को गोद में लिए उतरते देखा, तो कुछ आश्चर्य हुआ कि किसका बच्चा ले आई।

रिक्शेवाले को पैसे देकर मीता तेज कदमों से चलती, सीधे कमरे में चली गई। जनार्दन भी भीतर पहुंच गया, तो धीरे से बच्ची को उसके आगे किया।

"किसकी बच्ची है यह, मीता ? हाय, बड़ी सुन्दर-सी है !"

मीता कुछ न बोली सिर्फ मुस्कराती रही।

"क्या नाम है इस गुड़िया का ?" जनार्दन ने बच्ची के कपोल पर धीमी-सी चुटकी काटते हुए पूछा, तो मीता ने एक-एक अक्षर पर जोर देते हुए कहा, "स-वि-त्त-री···"

कुछ क्षण तो जनार्दन हतप्रभ-सा देखता ही रह गया। कुछ क्षणों के बाद, पूछा, "सवित्तरी कहां है, मीता ? वह नहीं आई तुम्हारे साथ ?"

"नहीं सुनील के बाबू ! और न आएगी ही।···"

जनार्दन अपनी स्तब्धता में ही था कि सवित्तरी के बच्चालाल के साथ चले जाने की बात बताते हुए मीता ने स्नेह और दृढ़ता से भरी आवाज में सिर्फ इतना ही कहा, "इस लड़की को मैंने गोद ले लिया है, सुनील के बाबू !"

जनार्दन के चेहरे पर थोड़ी अस्त-व्यस्तता देखते ही, मीता ने पूछा, "तुमसे सलाह किए बिना ही ले आई, तुम नाराज तो नहीं ?"

"मीता···!" जनार्दन ने उसे बीच में ही रोक दिया, "तुम सचमुच बड़ी औरत हो। तुमने जो कुछ किया है, अपने अनुरूप ही किया है। सुनील बगल में गया है। आता ही होगा। एक दिन मुझसे पूछ रहा था, 'मम्मी छिम्तर नहीं लाईं।' उसे देखते ही कहना कि 'लो, तुम्हारे लिए 'छिम्तर' ले आई हूं !"

जनार्दन के चेहरे पर प्रसन्नता देखकर, मीता ने एक गहरी सांस ली।

बच्ची को कसकर अपने आंचल से लगा लिया।

कुछ देर बाद किसी गाय के रंभाने की आवाज सुनाई पड़ी, तो जनार्दन उठ खड़ा हुआ, "लाओ, लोटा दो, मीता! तुम्हारी बिटिया के लिए दूध लेता आऊं।··· तुम्हें तो अब दूध होने से रहा।···"

मीता ने लोटा थमाते हुए, एक धौल जमाई और अहीरटोले की तरफ जाते जनार्दन को ओझल हो चुकने तक देखती रही।